Date :

Chapter- 4

: चतुर्थ अध्याय :

: कुमाऊँ की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों की भाषा :

: चतुर्थ अध्याय :

: कुमाऊं की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों की भाषा :

प्रास्ताविक :

शैलेश मटियानी एक आत्मजीवी , स्वप्नजीवी और स्मृतिजीवी लेखक जिन्हें अपनी धरती-पार्वती कुमाऊं की धरती से पागलपन की सीमा तक लगाव है । कुमाऊं प्रदेश के अल्मोड़ा जिले के बाड़ेछीना गांव में उनका जन्म हुआ । सन् 1931 से 1951 तक बीस वर्ष वे अपनी इस कुमाऊं भूमि पर रहे । उसके बाद दिल्ली , प्रयाग , दिल्ली और मुंबई में यायावरी जीवन । सन् 1956 ई के दिसम्बर महीने में मुंबई को सलाम करते हुए , पुनः इलाहाबाद आकर लेखनजीवी होने का कठिन-दुर्धर्ष संकल्प निभाने में जुट गए । स्वयं मटियानीजी ने कहा है उनकी रचना-प्रक्रिया के दो मुख्य पहलू रहे हैं — एक में कुमाऊं की पार्वत्य-पृष्ठभूमि से अनुप्राणित और दूसरे में बम्बई की समुन्दरी-संस्कृति की रेलपेल से प्रभावित रचनाएं । "कुमाऊं

और बम्बई -- मेरी साहित्य-सर्जना के दो क्षितिज रहे हैं, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव रहे हैं । इन दो क्षितिजों और उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवों के बीच ही मेरी रचना-प्रक्रिया पनपी है । मेरी कृतियों के कथ्य और शिल्प में, दायरे और दृष्टिकोण में इन्हीं दोनों क्षितिजों और ध्रुवों की मिट्टी, संस्कृति और परिस्थितियों के प्रतिबिम्ब उभरे हैं । ये प्रतिबिम्ब अभी अधूरे, धुंधले और असंतुलित हो सकते हैं, किन्तु इनसे बम्बई और कुमाऊं की मिट्टी और संस्कृति की गंध ~~फि~~ फूटती है और प्रतिबिम्बों में आत्मा की गंध को समाविष्ट कर पाना भी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होती है । " [1] उसके बाद उनके क्षितिज और भी विस्तृत हुए हैं और उसमें दिल्ली, इलाहाबाद, बनारस, कलकत्ता तथा कुमाऊं के अतिरिक्त का पर्वतीय प्रदेश भी शामिल हुआ है । प्रस्तुत अध्याय में हमने मटियानीजी के उन उपन्यासों की भाषा पर विचार किया है जिनमें कुमाऊं की धरती की गंध और लोक-संस्कृति के आखर मिलते हैं । ऐसे उपन्यासों में प्रमुखतः हौलदार, चिट्ठीरसैन, एक मुठ सरसों, चौथी मुट्ठी, मुख सरोवर के हंस, नागवल्लरी, गोपुली गफूरन, उगते सूरज की किरन आदि की गणना कर सकते हैं । मटियानीजी स्वयं कहते हैं -- " मेरे सृजनात्मक ~~क्ष~~ - उत्सों का बीजारोपण सेलना-सौलखेत और धनधार वनों की हरी-गहरी घाटियों में विचरते-विचरते, ऊंचे-ऊंचे टीलों-चट्टानों पर चढ़ते-चढ़ते ही हुआ है । ... मेरे आत्मिक-संस्कार मुझे कुमाऊं खण्ड की मिट्टी की ओर खींचते हैं, मगर मेरा ~~क्ष~~ दायित्व-बोध मुझे कहीं अन्यत्र खींच ले जाता है । फिर भी मेरे साहित्य-सृजन की आराध्या धरती-पार्वती ही है । ... मैं जानता हूं धरती मैया की माटी सदैव उर्वरा होती है । उसके आंचल में एक दाना पड़ता है, अंकुराता है, इक्कीस दानों की बाली उसके माथे पर अन्न-मुकुट-सी झूलने लगती है । धरती-माटी की इस उर्वरा-परंपरा ने ही कुमाऊं में इस आशीष-लोकोक्ति को जन्म दिया है : "एक की इकैसी हैजो, पांचों की पंचासी । " और मैं भी जब-जब

कुमाऊं की धरती-पार्वती के स्वरूप को आंखों में संजोए, कथा-सृजन की पूर्व-पीठिका को यज्ञ की स्वस्तिक-चिह्न-मंडिता वेदी की तरह संवारने लगता हूं, तो ऐसा लगता है, कि ~~कोई~~ एक कथा-बीज जो मैंने कहीं अपने मन की धरती पर ~~[illegible]~~ रोपा था, वह अंकुरा उठा है... और अंतर-कथाओं की अक्षर बालियां मेरी लेखनी के माथे झूमने लग गई हैं... और अपने अकिंचन सृजन-श्रम के बदले, अन्न-दानों जैसी तृप्तिदायिनी अंखरोटी पाकर, मैं कृतकृत्य हो उठता हूं, कुमाऊं की धरती-पार्वती के चरणों में नमित हो जाता हूं।" [2]

मटियानीजी के कुमाऊं की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों को प्रायः आंचलिक उपन्यासों के अन्तर्गत रखा गया है। और यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि आंचलिक उपन्यासों की भाषा स्थानीय बोलियों के शब्द-प्रयोगों के माध्यम से निर्मित होती है। स्थानीय बोली के माध्यम से ही लेखक उस अंचल की समग्रता को प्रस्तुत करता है। डा. रामदरश मिश्र इस संदर्भ में कहते हैं —

"एक तो स्थान विशेष का वातावरण चित्रित करने के लिए, दूसरे वहां के जीवन की जीवन्तता और उसकी मूल सहजता को अंकित करने के लिए स्थानीय बोली का प्रयोग अब आवश्यक हो जाता है। भाषा ऊपर से ओढ़ी हुई चीज़ नहीं होती है। वह स्थान विशेष के लोगों के संस्कारों और अनुभूति के साथ अनिवार्य भाव से संपृक्त होती है। अतः कुछ शब्द और मुहावरे इस प्रकार वहां के जीवन और सत्यों के साथ जुड़े होते हैं कि वे सत्य विशेष के साथ स्वतः लगे हुए चले आते हैं। उनका अनुवाद होता है परन्तु अनुवाद भावों अनुभूतियों या सत्यों की मूल गंध को वहन करने में असमर्थ होता है।" [3]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अंचल विशेष के उपन्यासों में अपने उद्देश्य या जीवन-दर्शन के अनुकूल भाषा का प्रयोग मिलता है। अ उपन्यासकार एक सीमित क्षेत्र को अपनी कथा का केन्द्र बनाता है, अत वहां की बोलचाल की भाषा के जरिए ही वह उसकी समग्रता को उद्-घाटित करता है। इसलिए ही वह स्थानीय भाषा का सहारा लेता

है जिसमें वहां की लोकोक्तियों , कहावतों , मुहावरों , ध्वनियों एवं अनेक अर्थ छवियों को अपने अंदर समेटे हुए होता है । डा. ज्ञान-चन्द्र गुप्त के शब्दों में कहें तो कह सकते हैं — " भाषा स्थान-विशेष के लोगों की अंतश्चेतना उनके संस्कारों एवं उनकी अनुभूति के गहरे स्तर पर जुड़ी होती है । अतः उस स्थान विशेष की आंतरिकता की पूरी पकड़ उसीके सहारे संभव है ।" 4

मटियानीजी के उपन्यासों की भाषा पर जब विचार करते हैं तो सबसे पहले इस तथ्य पर ध्यान जाता है कि उनका अपनी भाषा और लोक-संस्कृति से गहरा निकट का सम्बन्ध है । उनके आंचलिक उपन्यासों में हमें राल्फ फाक्स जिसे "मानव-जीवन का गद्य " कहते हैं उसका अनुभव होता है । जब वे अपनी भाषा में कुछ लिखते है तो इनके शब्द-शब्द से कुमाऊं अंचल की विशेषताएं प्रकट होती है । अतः उस जीवन के अध्ययन के लिए भी यह भाषा कारगर सिद्ध होती है । यही कारण है कि उनके उपन्यासों के पात्र व्यक्ति-विशेष न रहकर अंचल के सांस्कृतिक प्रतीक बन जाते हैं । स्थानीय या आंचलिक भाषा-प्रयोगों के बारे में स्वयं मटियानीजी कहते है — " "हौलदार" और चिटठीरसैन की भाषा-भूमि में आंचलिक भाषा के बुरुंश फूल खिलें , अन्य हिन्दी उपन्यासों की भाषा-भूमि से इसका प्राकृतिक सौन्दर्य अलगदिखाई दे , यह लेखक का उद्देश्य रहा है । आंचलिक शब्दों की अपेक्षा आंचलिक शिल्प की प्रमुखता रहे , ऐसा मेरा प्रयास रहा है । मगर सफलता तो इसकी और ही आंकेंगे । ... मेरा आग्रह आंचलिक शिल्प के प्रस्तुतीकरण के प्रति अधिक है , ताकि हिन्दी साहित्य को कुछ नयी कथा-शैलियां मिल सकें ।" 5

कुमाऊं की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास : कुछ भाषागत प्रयोग :

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है मटियानीजी के कुमाऊं प्रदेश पर आधृत उपन्यासों में उन्होंने आंचलिक शिल्प पर सविशेष ध्यान दिया है । अन्य हिन्दी उपन्यासों की तुलना में

इन उपन्यासों की एक अलग पहचान हो इस बात की कलागत सजगता उन्होंने हमेशा बरती है । मेरे निर्देशक डा. पारुकान्त देसाई हमें कई बार कह चुके हैं कि मटियानीजी के सामाजिक सरोकार और उनकी मानवीय संवेदना से तो मैं बाद में प्रभावित हुआ हूं, प्रथमतः शैलेश के साहित्य के प्रति, विशेषतः उपन्यास साहित्य के प्रति, आकृष्ट उनकी भाषाशैली के कारण हुआ हूं । यहां पर उनकी कतिपय ×× भाषागत विशेषताओं को उजागर करने का हमारा लक्ष्य है ।

" एक मूठ सरसों " उपन्यास में आंचलिक बोली की रंगत और भी उभरकर आयी है । कई बार ऐसा होता है कि आपस में बात करते हुए कभी-कभी अश्लीलतम ×× शब्दों का प्रयोग हो जाता है । पर मटियानीजी ने इन अश्लीलतम शब्दों का भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रयोग किया है । इन शब्दों का प्रयोग उन्होंने मनोरंजन के लिए नहीं, अपितु किसी सामाजिक समस्या को सामने लाने के उद्देश्य से ही किया है । अश्लील शब्दों के प्रयोग को आंचलिक उपन्यासों में दोष या कमी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह भी आंचलिकता की एक शर्त के रूप में आता है । उपन्यास यथार्थ की ×× विधा है । हम ग्रामीण जीवन में प्रायः देखते हैं कि गांवों में कुछ लोग होते हैं जो बिना गाली के बात ही नहीं करते । गाली के बिना उनका व्यक्तित्व अधूरा लगता है । "आधा गांव " का फुन्ननमियां एक ऐसा ही पात्र है । जीवन की विकृतियां भी यथार्थ का ही एक हिस्सा है, तो भाषा में इस यथार्थ का आना स्वाभाविक ही माना जाएगा । "एक मूठ सरसों " उपन्यास में उद्दुवा नामक पात्र सद्दुवा को कहता है —

" उद्दुवा ! यार सद्दुवा औरतें ठुट्टुक कैसे लगाती है रे ? जैसे हमारी देवकी प्यारी की महतारी, रेवती काकी ने भड़कसिंह चचा के साथ लगाया था और जैसे तेरी सेतुली बकरी ने हमारे चनुआ बकरे के साथ लगाया था । और इसके बाद दोनों ने बकरी-बकरे जैसी हरकतें

करते हुए सीधे देवकी से कहा था -- क्यों वे हमारी देवकी प्यारी हमसे झुटुका लगवायेगी ।"[6]

कुमाऊंनी बोली में "झुटका" लगाना एक अश्लील शब्द है । परन्तु यहाँ वह शब्द आंचलिक यथार्थ की आवश्यकता के रूप में आया है । मटियानी जीने इस संदर्भ में कहा है : " अक्सर मेरा नाम उन लेखकों में आता है, जिन पर अश्लीलता के आरोप लगाए जाते हैं, आरोप से, आलोचना से घबरा जानेवाला साहित्यकार तो मैं हूं नहीं, क्योंकि मैंने भारतीय समाज के तथाकथित सांस्कृतिक, साहित्यिक महंतों और शोषकों - उत्पीड़कों के आगे उनकी आत्माओं के बीभत्स और घिनौने रूपों के प्रतिबिम्बों को उघाड़ने वाले आईने यदि रखे हैं तो एक साहित्यिक दायित्व बोध के साथ ।"[7]

अश्लील शब्द हों या साधारण शब्द, सब इनके यहाँ स्थानीय बोली के साथ आते हैं । इस संदर्भ में "चिट्ठीरसैन" उपन्यास की साबुली का कथन देखिए --" म्योल पड़ जावें यह चोरी इसके हाड़ों को बाघ लग जाए । इसकी कचुनी में कीड़े पड़ जाएं । चार घंटे से ऊपर हो गए मसारते-मसारते, मजाल है जो पंगुर जाए ।"[8] यहां साबुली का यह कथन पर्वतीय स्थानीय बोली के स्वाभाविक रूप को प्रकट करती है । "म्योल", "कचुनी", "मसारना", "पंगुरना" आदि शब्द पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्र के लोग ही जान सकते हैं ।

"चौथी मुट्ठी" उपन्यास में भी हम देख सकते हैं कि लेखक का लगाव अपनी स्थानीय बोली से ज्यादा है । स्वयं लेखक इस संदर्भ में कहते हैं --" मैंने मोतिमा मस्तानी के माध्यम से एक बात कहनी चाही है, वह यह कि मनुष्यों की भाषा उसके जन्मगत संस्कारों से नहीं बिगड़ती-संवरती, बल्कि जन्म के बाद की परिस्थितियों और उनकी प्रतिक्रियाओं के अनुसार ढलती है । मोतिमा के प्रति उदासीन रहकर उसे पागल और मस्तानी बनने तक को मजबूर कर देने वाले तथा उसकी नंगी देह और गंदी गालियों का जायका लेने वाले ही उस पर अश्लीलता

और दुश्चरित्रता का आरोप लगाएं, यह एक विडंबना तो है, मगर जैसे कुछ हमारा सामाजिक ढांचा चला आ रहा है, उसके बीच इससे कुछ इतर की आशा करना ही व्यर्थ है।"[9]

ग्रामीण शब्द प्रयोग और ग्रामीण भाषा की व्यंजना खड़ी बोली के ढांचे में साकार करने की चेष्टा मटियानीजी के उपन्यासों में मिलती है। यहां आंचलिकता का रंग खूब फबकर आया हुआ है। "सुख सरोवर के हंस" या "उगते सूरज की किरन" जैसे उपन्यासों को देखते हुए कह सकते हैं कि लोकगीतों, लोकोक्तियों आदि को कथोपकथन में स्थान देकर लोकरंग उभारने का भरसक प्रयत्न मटियानीजी ने किया है। जाहिर है कि लोकजीवन में पगा हुआ और उसकी मस्ती में डूबा हुआ लेखक ही ऐसा कर सकता है। डा. आदर्श सक्सेना के विचार इस संदर्भ में ध्यातव्य रहेंगे —" आंचलिक उपन्यास में यह भाषा जन-सामान्य की होते हुए भीआंचलिक रंग में रंगी होती है, अर्थात् आंचलिक उपन्यासकार आंचलिक रूपों का समावेश कर कथा ही नहीं कहता वरन घटनाओं और चरित्रों का विश्लेषण भी करता है।"[10]

यहां यह तथ्य भी गौरतलब रहेगा कि मटियानीजी के इन उपन्यासों में भाषा के कई रूप दृष्टिगोचर होते हैं, बल्कि श्रुतिगोचर कहना अधिक उपयुक्त रहेगा। यहां उपन्यासों की आधारभूत भाषा तो खड़ीबोली है किन्तु कुमाऊं प्रदेश की स्वाभाविकता और लाक्षणिकता लाने के लिए लेखक पात्रों के कथोपकथनों में लोकशब्दों, लोकोक्तियों, मुहावरों आदि का प्रयोग करता है। वस्तुतः कुमाऊंनी के शब्दों के प्रयोग द्वारा खड़ी बोली हिन्दी का एक विशिष्ट रूप हमें यहां दृष्टिगत होता है जिसे हम मटियानीजी की विशिष्टता या उनका हिन्दी भाषा को योगदान कह सकते हैं। सामाजिक चाल-चलनों, प्रथाओं तथा पूजा-पाठ से संबंधित विशिष्ट शब्दों का प्रयोग कुमाऊं संस्कृति को उजागर करता है और जिसमें वहां की मिट्टी की एक सोंधी गमक अनुप्राणित होती है।

मटियानीजी के कुमाऊं की पृष्ठभूमि पर आधृत उपन्यासों के अध्ययन से ज्ञापित होता है कि उनकी इस आंचलिक भाषा के दो रूप हमें मिलते हैं — 1. अति-आंचलिक भाषा — जिसे धौलछीना - रायछीना की औरतें और शिल्पकारिनें बोलती हैं , और 2. हिंदी-मिश्रित आंचलिक भाषा जिसे अधिकांशतः पुरुष-पात्र बोलते हैं और जिसमें कहीं-कहीं कुमाऊं की छोट वाले अंग्रेजी शब्द-प्रयोग भी मिलते हैं । प्रथम प्रकार की बोली का एक उदाहरण यहां "हौलदार" उपन्यास से प्रस्तुत है जिसमें जैता और गोविन्दी का वार्तालाप है । यथा —" ठुली भौजी तुमको तुमको इतना सताती है , मगर तुझसे जरा भी किसी किसिम की होशियारी नहीं हो सकती ? ले मेरी चानी , मार त्वरर ज्वात (ले मेरा सिर मार मेरी जूती) कहने में तुम जैसा उस्ताद मैंने मैंने नहीं देखा नानी भौजी ? जैता बरबस मुस्कुरा उठी । ... एक ठुली दीदी थोड़ा डांटती फटकारतीं है तो क्या हो गया गोगी ? एक मन तो कभी-कभी करता है कि मैत चली जाऊं जहां गांठ वन्द नहीं रहा वहां गलवों का क्या काम ?" ।।

पुरुषों की भाषा में आंचलिक मिश्रित खड़ीबोली का रूप सुनाई पड़ता है । यथा —" तुमने यह साबित करने की कोशिश कोशिश की थी ××× , गोपुली काकी , कि अगर देवता गोल्लगंगनाथ की छाया सिर पर हो तो कश्मीर फ्रण्ट की डिश भौलि याने श्मशान घाटी से भी आदमी सही सलामत लौट सकता है घर .... और इसी प्रकार का भरोसा वे लोग भी कर सकते हैं , जिनकी तरफ से चित्तयी के गोल्ल देवता के दरबार मंदिर में बोकिया घण्टे आदि कई पूजा के समान चढ़ाए जा चुके हैं । मगर तुमको इस हकीकती से भी बेखबर नहीं रहना चाहिए , गोपुली काकी , कि कुमायूं क×× कमिश्नरी , जिससे हमारे अल्मोड़ा जिले के साथ-साथ नैनीताल के गढ़वाल के दोनों जिले भी शामिल हैं — से कश्मीर की लड़ाई पर जाने वाले हरेक जवान की तरफ से गोल्लगंगनाथ भोलानाथ और हरूशैम आदि देवताओं के दरबार में

पूजा पहुंचती है कि हे परमेश्वर कश्मीर के दैत्यकारी कबाली पठानों की रैफली मशीनरी से हमारे प्राणों की रक्षा करना । मगर आखिरी में लौटते कितने लोग हैं सही सलामत ? अरे गोपुली काकी , वहां पठानों की बुलैटों की भट्टाम पैर से जवानों की छाती का शिकार बनता है , और इधर मंदिरों में चढ़ाए उनके नाम खुदे घंटे से टन की आवाज़ भी नहीं निकलती है ।"[12]

कुमाऊं अंचल में प्रचलित कुछ संबंधवाची शब्दों का इस्तेमाल मटियानीजी ने कुमाऊं बोली में ही किया है । यथा -- बोज्यू (पिता) , इजा (माता) , ठुली भौजी (बड़ी भाभी) , नानी भौजी (छोटी भाभी)[13] , दीदी (जिठानी) , कैंजा (सौतेली मां) , आमा (दीदी) , ज्यू (ससुर) , ब्वारी (बहू) , काका (चाचा)[14] आदि- आदि ।

यहां पर उन शब्दों की सूची देना भी बड़ा रसप्रद रहेगा जिनका प्रयोग कुमाऊंनी बोली में रोजमर्रा के जीवन में होता है । ऐसे शब्दों के प्रयोग मटियानीजी ने यथोचित स्थान पर किए हैं । यथा --

पनीचे (आंचल) , बगड़ (तट) , थौलमुख (होठ मुख) , गुपटियौल (गोबर का उपला) , रमुट (कुल्हाड़ी) , मैल (मील), पैसला (फैसला) , दातुली (दरांती) , जांठें (लट्ट) , टुकी-याल (चीखभरी पुकार) , रामढौल (वाद्य) , फौड़ा (फावड़ा) , जैजात (जायदाद) , सौरास (ससुराल) , डिब्बू (गोदाम) , डाढ़ (रूदन) , गोरू (गाय) , भुक्की (चुंबन) , छूटका (अनैतिक गर्भ) , ~~ह्यूम~~ ह्यून (शरदऋतु) , बापसैप (बाबूसाहब) , नौ (नाव) , बीराकु (बिल्ली) , कमन (संबंध) , धार (टीला) , उपन्याठी (उपद्रवी) ख, बमगगो (ब्राह्मण गांव) , खसगो (क्षत्रिय गांव) , असजीली (गर्भवती) , घुटीकुंद

(भुना हुआ खोआ) , डाडू पनियाल (कलठी चम्मच) , जौलहाथ (प्रणाम) , फ्चैक (थप्पड़) , झिमौड़ी (बर्रे) , गिड़वा (गेंद) आदि आदि ।[15]

मटियानीजी की भाषा का अध्ययन करते हुए एक और तथ्य जो मेरे सामने आया वह यह है कि कुमाऊंनी बोली में भी कई ऐसे शब्द मिलते हैं जो गुजराती (विशेषतः ठेठ या ग्रामीण गुजराती) में भी उपलब्ध होते हैं । मैं गुजराती-भाषी होने के कारण इस बात को पकड़ पाया हूं । विद्यापति पढ़ते समय भी मैंने अनुभव किया था कि मैथिली के भी कई शब्द गुजराती में मिलते हैं । इस बात से डा॰ ग्रियर्सन का वह अंतरंग-बह बहिरंग वxxxxx वाला सिद्धान्त एक सीमा तक ठीक है ऐसा प्रतीत होता है । जो भी हो , यहां मटियानीजी के ऐसे शे शब्दों को सूचीस्थ करने के मोह का संवरण नहीं कर पा रहा हूं । यथा —

छो (छे) , अबेर (अवेर) , झगुली (झबलुं) , पैलाग (पायलागु) , गास (गराह) , नारसींग (नारसींगो) , ध्वां-प्वां (धुआंपुआं) , चौफेर (चोफेर) , संगरांत (सक्रान्त) , बफार (बफारो) , ल्वार (लुवार-लुहार) , दाज्यू (दाजी) , बोकिया (बोकड़ो) , नौताड़ (नवतर) , देवताथान (देवस्तान) , जेठाणी (जेठाणी) , मयेडी (माडी) , सोल शरादों (सोल शराद) , दाणी रखना (दाणा जोवा) , थैसियत (थैसत) , बमणगों (बामणगाम) , जगरिया (जागरियो) , जागर (जागर) , बेत (वेतर — गाय या भैंस जितनी बार ब्या चुकी हो उसे वेतर कहते हैं ।) , धचबचा (धचधचा) , बाई (वाई) , असौज के नौर्ते (आसोनां नारतां) , डुंगरका (डुंगरका - "काका" के लिए संक्षिप में "का" कहने की रीति गुजराती में भी है , जैसे - डुंगरका , परतापका , मोहनका आदि) ;[16] अधबीच (अधवच्चे) , अधराती (अधरात) , सासू (सासु) , नितर आई थी (नीतरवुं) , रौला (राळो) , झोल (झोल) , दातुली (दातरडी) , खातड़ी (खाटली),

नम नम के बोलना (नमी-समी ने बोलवुं) , खवाई (खवई) , हुंकारी (हुंकारो) , तुंबी (तुमडी) , बबाल (बबाल) , बेणा (बेणी) , उखेलना (उखेडवुं) , उझिरी (ओझरी, होझरी) , छाबरी (छाबड़ी) , उमेदसिंग फलसिमाव (ऐसे व्यक्ति के पीछे गाँव का नाम लगाने की प्रवृत्ति गुजरात में भी मिलती है । जैसे – सोमो मारधरियो , परशु अलवियो , मोहन गुतालो आदि- आदि) ; [17] कौली (कुमळी) , तौली (तपेली) , सत्तीसिरी (स्वस्ति श्री) , भाखतो ([illegible] भाखवो) , सोरास (सासरुं) , काढ़के (काढीने) , न्यारा करके (नियारा करीने) , बार-तेर साल (बार-तेर साल) , वस्तुर (वस्तर), बक्खर (बक्खड) , बौराणी (बहुरानी) , बिछुलना (वछुटवुं) , जेठी (जेठी- परिवार में जो लड़का ज्येष्ठ होता है उसे जेठी कहते हैं ।) , बबाल (बबाल – झंझट के अर्थ में) , नग (नंग) , मयेडी (माडी); [18] [illegible] पराल (पराळ) , दीवानका (दीवानका- दीवानकाका) बेत (वेंत- बालिश्त) , मंझरात (माझमरात) , हंस (हंस- आत्मा के अर्थ में) , लाव-लश्कर (लाव-लश्कर – सैन्य के अर्थ में) , माकोट (मोसाळ) ननिहाल के अर्थ में) , ढोर-ढांकर (ढोर-ढांखर) ; [19] हौंस (हौंस – उत्साह के अर्थ में) , मन्योडर (मन्योडर – मनी आर्डर के लिए) , भात (भात –चावल के अर्थ में) ;।[20]

यहांपर कुमाउंनी बोली के शब्द पहले दिए गए हैं और कोष्ठक में गुजराती के शब्द दिए गए हैं । दूसरी बात यह कि यहाँ उनके कुछेक उपन्यासों के शब्द दिए गए हैं । उनके और उपन्यासों में भी इस तरह के कई शब्द मिलते हैं । ऊपर एक शब्द दिया गया है — भात । हिन्दी भाषी क्षेत्रों में कहीं-कहीं शादी-ब्याह के अवसरों पर ननिहालवालों की ओर से जो भेंट-सौगात दी जाती है , उसे भी "भात" कहते हैं । "भात" पहनाने वालों को "भतैया" कहा जाता है । गुजराती में उन्हें "मोसाळिया " कहते हैं ।

आंचलिक या लौकिक बोली तथा कृषि-विषयक शब्द :

शैलेश मटियानीजी के कुमाऊं-पृष्ठभूमि के उपन्यासों में उपर्युक्त प्रकार के शब्दों की बहुतायत उन्हें एक बिर्श्ँ विशिष्ट प्रकार के शैलीकारों में स्थापित करती है । इनके ग्रामीण परिवेश से संपन्न उपन्यासों में लौकिक § कालोक्यूअल्स § तथा कृषि से सम्बद्ध शब्द श्रुतिगोचर होते हैं । यहां कुछ उदाहरणों को देने का उपक्रम है --

तुमड़िया लौकी § एक किस्म की लौकी या घीया तो लम्बी होती है, किन्तु एक दूसरी किस्म की लौकी में उसका आकार तुम्बे या तुमड़े जैसा होता है, उसीको तुमड़िया लौकी कहते हैं । §, बाबिल घास, सैंतुवा §पालक§, जुद्ध-विद्या, दोपलिया टोपी, बरमास्त्र §ब्रह्मास्त्र §, जौल हाथ § प्रणाम §, फसकिया § वार्ताप्रिय §, कफलियां § प्रेयसियां §, इजा § मां §, चिलमतार § साझे की चिलम §, कुकाट § चीखें §, मन्योडर § मनीआर्डर §, बाखली §पंक्रिक्सx पंक्तिबद्ध घरों का समूह - गुजराती में "फळिxx फळियुं" §, दनैला § खेतों में अनुपयोगी घास को निकाल बाहर करने का एक कृषि-विषयक साधन §, जाले § मडुआ-मदिरा आदि अन्नों के पौधों के बीच से निकाली गई घास जो ढोरों के खाने के काम आती है §, डंगरिया §जिसमें देवी-देवता अवतरित होते हैं -- गुज. में "भूवा " §, जगरिया §जागर गानेवाला - गुज. जागरियो §, डुमौड़ § अछेतों की बस्ती §, भैंसिया पंडित्याण § भैंसवाली पंडिताइन §, तिखंनिया मकान § तीन खण्डों वाला मकान §, बनखुस्याणी § जंगली मिर्च §, रिंगरूटिंग हाफिस § रिक्रूटिंग आफिस §, जनम बैल गाय § जो गाय बांझ रहती हो §, लाचारदर्जी § लाचारी या विवशता §, लाल पोंकिया बानर § लाल मुंहवाला बन्दर §, चाख § बरामदा - गुज. में परसाळ §, जतिया § सांड §, गुपटौला § गोबर का उपला §, बोकिया § बकरा §, सरभिस § सर्विस §, दोयम चित्ती § दुविधा §, मुखबोलन्ती § बोलचाल का व्यवहार §, धैलियत § आशंका - देहशत§,

नौताइ डंगरिया § नया-नया डंगरिया, नवतर का अपभ्रंश रूप §, कैंजा § सौतेली मां, शायद कुब्जा का लौकिकरूप §, छिलुक § लीसा-वाली लकड़ी जो मशाल का काम देती है । §, डैंखर § डाह - गुज. में डंखार एक ऐसी जंगली मक्खी होती है जिसका डंख बहुत तीव्र होता है §, अंताज § अंदाज़ §, कच्यार § कीचड़ §, धौ § तृप्ति, गुज. धरावुं §, दोफरी § दुपहरी §, मयेड़ी § मां §, बमकुवा भेल § चंचल चूतड़ §, ठुलदा § बड़े भैया §, छोरमुल्या § मातृ-पितृ-हीन बालक §, दनर-फनर § बहुतायत §, शिकैत § शिकायत §, भिटौली, बकमध्यायी §वाद-विवाद §, रौंड § राउण्ड §, जतकाली § प्रसविनी §, जैजात § जायदाद §, किंतो § मछली के छोटे-छोटे बच्चे, गुज. में झिंगा §, बोलियों § मजदूरों §, सौबार § सोमवार §, जम्बू § एक तिब्बती घास जो दाल-शाक आदि छौंकने में काम आती है ।§, इस्टुडण्ट § स्टुडण्ट §, भुली § भाई §, लाज दकंत्री, अदिन §खराब समय या दिवस §, असजीली § गर्भवती §, पगल्यौल § पागल-पन §, दातुल § दातुन §, अन्यारी § अंधेरी §, मुस्यार §खसम§, बनदडवा § वन-बिलाऊ §, चुच § स्तन §xxxxx, तुलनीय - संस्कृत-कुच §, बेत § गाय-भैंस आदि जितनी बार ब्याती है उसे उतने बेत की कहा जाता है, गुज. वेतर §, मैत § मैका §, उपद्दरी § उपद्रवी §, चान्नी § सिर की चांद - टाल §, काम-कराई § मजदूरी §, कतुवा §तकली§, फचैक § थप्पड़ - ध्वनिवाची शब्द §, फटपिलन्ना § चाल-बाजी §, सैप § साहब §, टौदिल § आंधा §, पोथिल §बच्चा §, लौंडियोली § लौंडियापन §, बच्चेदानी § गर्भाशय - यूटेरस, गुज. में भी उसे बच्चेदानी ही कहा जाता है । § जबरजण्ड §जबरदस्त § ;21

छिहाडी § छि-छि §, सौर § ससुर §, दुष्टाई § दुष्टता §, जर §बुखार - संस्कृत- ज्वर §, सौरास § ससुराल §, बौराणी §बहुरानी§, सत्-सामल § सतीत्व और देह, गुज. शीयळ §, नग §नंग - ठग या लुच्चे के लिए §, दोबटिया § दोराहा, गुज. में राह को बाट भी कहते हैं §, बकतरूआ § बकनेवाली §, चिलमनंगी

§एकदम नंगी § , सँझेती § हिस्सेदारी § , नलतुरे की छड़ी § बढ़ती हुई कन्या § , त्रिलोक § श्लोक § ; — द्रष्टव्य : उपन्यास : चौथी मुट्ठी : पृ. क्रमशः : 4, 6, 6 , 9 , 13, 29, 31, 67, 79, 111, 122, , 134 , 148 , 163 । कौली-कौली § कोमल-कोमल§ , पोथिली §पुत्री§ , पोइण्टबाजी , झुटकेली § नाजायाज§ , उखेल-पुखेल , फितोड़ना, बुढ़ियाकाल , ततेरा-मलाशा , दट्ठली , चिपलजड़ी , फाँरयाती जाना §फैलती जाना § , भिटौली की छापरी § भिटौली की छाबड़ी § , कष्टीले दिन , फगुनौटी हवा , कोखिला §सहोदरा§ , बबाल-टलाई , खसमटोकुवा ; एक मूठ सरसों : पृ. क्रमशः 2, 3, 6, 8, 32, 34, 37, 38, 45, 53, 53, 77, 83, 83, 82, 85 § खरुआ § एक वन्य तागा जो संन्यासियों के लिए पवित्र माना जाता है § , घिंघारू-हिंसालू § दो वन्य फल § , डोटि-याली § डोटी प्रदेश की § , दूधवंती , पराल § पुआल§ , नौमिट §वंशनाश§ ,अनतती नौंनी § गरम नहीं किया हुआ नवनीत § , दड्वे §बिल्ले § , रमौलिया § कथा-गायक§ , खौरी § सिर § , घुंघुरिया मुण्ड § घुंघराले बालों वाला सिर § , भिंदियाली बयार , घुनघुनिया चाल § घुटनों की चाल § , माकोट § ननिहाल§ , बलता दीपक §जलता दीपक § कुआँखरभरी पाती आदि-आदि § मुख सरोवर के हंस : पृ. क्रमशः 5, 5, 12, 14, 23, 23, 70, 93, 98, 98, 101, 117, 139, 155, 163, ×88× 165 § ; ।

व्यक्तिवाची नाम :

यद्यपि व्यक्तिवाची नामों का अब कुछ सामान्यीकरण हो गया है , किन्तु पहले व्यक्तिवाची नाम न केवल प्रदेश किन्तु जाति को भी सूचित करते थे । अब भी कुछ हद तक व्यक्तिवाची नाम किसी-प्रदेश विशेष को सूचित करते हैं । विकासभाई , प्रकाशभाई जैसे नामों को सुनते या पढ़ते ही हम कह सकते हैं कि ये नाम गुजरात के ही हो सकते हैं । पंजाबी में तो कई बार लड़के-लड़की के नाम एक जैसे ही होते हैं , केवल लड़कियों के नाम के पीछे "कौर" शब्द लगता है जिससे उनके लिंग

का पता चलता है , जैसे प्रकाश लड़के का नाम भी होता है और लड़की का भी , किन्तु लड़की को "प्रकाशकौर" कहा जायेगा । कुमाऊं के ग्रामीण अंचलों में प्रायः निम्न या मध्यश्रेणीय जाति की स्त्रियों के पीछे "ली" प्रत्यय लगता है , जैसे गोपुली , खिमुली , मिमुली , सस्ली , नस्ली , नदुली आदि-आदि । वैसे ही ग्राम्यांचलों में पुरुषवाची नामों में जमनसिंह , गोबरसिंह , डुंगरसिंह , जसौतसिंह , नानसिंह, मानसिंह , पानसिंह , आनसिंह , हरसिंह , हरकसिंह , चनरसिंह , उदेसिंह , उमेदसिंह , अधमसिंह , उत्तमसिंह आदि नाम प्रायः मिलते हैं । [22]

संबंधवाची या संबोधनवाची या जाति-विशेष को सूचित करनेवाले शब्द :

प्रत्येक प्रदेश एवं भाषा या बोली में कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनसे उनके संबंधों का पता चलता है । कुमाऊं प्रदेश में पिताजी को "बौज्यू" कहा जाता है । कदाचित् यह "बाबूजी" का ग्राम्य-रूप होगा । उसी तरह बड़े भाई को "दौज्यू" कहा जाता है । कहीं-कहीं "दाज्यू" शब्द भी मिलता है । गुजराती में ग्रामीण प्रदेशों में इसी शब्द के लिए "दाजी" शब्द प्रयुक्त होता है । "दाज्यू" पिता के बड़े भाई को भी कहते हैं । पिताजी के छोटे भाई को "काका" और बड़े भाई को "दाज्यू" या "दौज्यू कहा जाता है । गुजराती में भी "काका" शब्द प्रचलित है । कुमाऊं में इसी काका का एक संक्षिप्त रूप "का" भी चलता है । ध्यान रहे पंजाबी में "काका" छोटे लड़के को कहा जाता है । कुमाऊं प्रदेश में "ज्यू" एक सम्मानवाची प्रत्यय है । बड़े व्यक्तियों और लोगों के नामों के पीछे प्रायः उसे लगाया जाता है । ससुर को "सौरज्यू" और "सास" को "सासुज्यू" कहते हैं । ठाकुर ब्राह्मणियों को बौराणिज्यू कहते हैं । छोटी जाति के लोग ब्राह्मणियों और ठकुरानियों को "बौराणिज्यू" कहते हैं । गुज-रात में कहीं-कहीं ब्राह्मणियों को "गोराणी" भी कहते हैं । इसी तरह "गुसैणी" और "गुसाईं " शब्द का प्रयोग क्रमशः मालकिन एवं मालिक के लिए होता है ।

क्षत्रियों को "ठाकुर" , "बिष्ट" या " खस" कहते हैं । अस्पृश्य निम्न जातियों को "डूम" या "चमार" कहा जाता है । अच्छे शब्दों में अब उन्हें "शिल्पकार" कहा जाता है । कहीं-कहीं "वाल्मीकि" शब्द भी प्रचलित हो चला है । राजपूतों को बिष्ट कहते हैं और निम्नवर्गीय शिल्पकार उनकी पत्नियों को " बिल्ट्यापिज्यू" शब्द से संबोधित करते हैं । ब्राह्मणों के गांवों को ﴾ अर्थात् जिन गांवों में ब्राह्मणों की आबादी ज्यादा होती है ﴿ "बामणगों" और क्षत्रियों के गांवों को "खसगों" कहा जाxxx जाता है । अवतारी डगरिये स्त्री को "स्यूनारी" और पुरुषों को "स्योंनार धनी" से संबोधित करते हैं । कुढ़ने या झगड़ने पर इतरवर्गीय लोग xब्रxxx ब्राह्मणों को "लिना" और क्षत्रियों को "खसिया" कहते ि हैं । कुमाऊं प्रदेश में प्रायः शूद्रों के नाम के पीछे "राम" प्रत्यय जुड़ता है । जैसे मायाराम , डिगरराम , हरराम , सेवाराम , परसराम आदि नामों से ही उनके शूद्र जाति के होने का पता चलता है । यदि किसीका नाम "हरसिंह" है तो वह क्षत्रिय हुआ और यदि "हxxx हरराम" हुआ तो वह शूद्र हुआ । क्षत्रियों के पीछे "सिंह" या "सिंग" प्रत्यय लगता है । शूद्रों के मुहल्ले को "डूम्योल" कहा जाता है । हिन्दी क्षेत्र में उसके लिए "चमारड़ी" या ﴾ " चमरौटी" शब्द प्रचलित है ।[23] दूसरा एक तथ्य जो ध्यातव्य है वह यह कि कुमाऊं प्रदेश में भी गुजरात की भांति कहीं-कहीं यह परंपरा मिलती है जिसमें व्यक्ति के नाम के पीछे उसके गांव के नाम का उल्लेख होता है , जैसे उमेदसिंह फलसिमाव ।[24] उमेदसिंह फलसिमाव गांव का रहनेवाला है यह बात इस संज्ञा से स्पष्ट हो जाती है । दूसरी एक बात यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि गांव के मुखिया को यहां "थोकदार" कहा जाता है और जो व्यक्ति थोकदार है , या कभी थोकदार रह चुका है उसके नाम के आगे यह शब्द जोड़ा जाता है और गांव के स्त्री-पुरुष उन्हें सम्मान में "थोकदारज्यू" संज्ञा से सम्बोधित करते हैं ।

कुमाऊँ प्रदेश के लोकदेवता और उससे सम्बद्ध शब्दावली :

प्रत्येक प्रदेश के अपने कुछ लोकदेवता होते हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणपति, राम, कृष्ण जैसे सर्वसामान्य और सर्वमान्य देवताओं के अतिरिक्त इन लोकदेवताओं का विशेष महत्त्व होता है, बल्कि ग्राम्यांचल के लोग इन्हीं देवी-देवताओं को ज्यादा महत्व देते हैं। ये देवता उनके अपने होते हैं। यदि गुजरात की बात करें तो गुजरात में "बळिया बापजी", "माधुजी महाराज", "रामदेव महाराज" तथा देवियों में मेलडी माता, शिकोतर माता, खोडियार माता, कालका माता, चामुण्डा आदि विशेष उल्लेखनीय समझे जायेंगे। उसी प्रकार कुमाऊँ प्रदेश के भी अपने कुछ लोकदेवता हैं जिनका उल्लेख करना यहाँ अत्यावश्यक है।

कुमाऊँ के लोकदेवताओं में "गोल्ल- गंगनाथ" का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। जिस पुरुष या नारी विशेष में इनका अवतार होता है, उसे लोकभाषा में "डंगरिया" कहते हैं। कदाचित् सर्वप्रथम इन लोकदेवताओं ने "डंगरियों" (ग्वालों) में अवतार लिया हो, इसीलिए उसे "डंगरिया" कहा गया हो।[25] आज भी गुजरात में हम देख सकते हैं कि जो लोग गाय-भैंस-भेड़- बकरी आदि चराने जाते हैं उनके खेलों में एक यह भी होता है। "जागर" के "आखर" गाने का अभ्यास ये लोग खेल-खेल में ही करते रहते हैं। गुजरात में इन "डंगरियों" को "भूवा" कहते हैं और ये तंत्र-मंत्र तथा "मैली विद्या" के भी विशेषज्ञ माने जाते हैं, अतः गाँव के लोग उनका सम्मान करते हैं, किन्तु इस सम्मान की भावना में उनका "भय" भी होता है कि कहीं क्रोधावेश में वे उनका कुछ अहित न कर बैठें।

कुमाऊँ प्रदेश के दूसरे बड़े लोकदेवता हैं — सैमदेवता या सैम-राजा। "हौलदार" उपन्यास के हरकसिंह स्वयं को बाल-ब्रह्मचारी बताते हैं और वे "सैमराजा" के डंगरिया हैं। उपन्यास में ऐसा बताया गया है कि उन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी "सैमराजा" की भक्ति में

लगा दी है ।[26] एक और बात जो यहां की उल्लेखनीय है वह यह कि "गंगनाथ-भाना" एक लोकदेवता दम्पति है । "गंगनाथ" देवता है और "भाना" उनकी पत्नी और देवी है । "हौलदार" उपन्यास की गोपुली काकी में त्रि-देवता " आते हैं — गोल्ल , गंगनाथ और भाना । [27] सैमराजा के साथ-साथ कुछ डंगरियों में "हरूराजा" भी अवतरित होते हैं । इसी उपन्यास के केशरसिंह के पुत्र उधमसिंह के अंग में "नारसिंह " आते हैं । गुजरात में इसीको "नारसिंगा" कहते हैं ।

इनके अतिरिक्त पंचाचूली के पंचनाम देव भी कुमाऊं के लोकदेवताओं में आते हैं । पंचाचूली कुमाऊं प्रदेश के अल्मोड़ा जिले के पास एक उत्तुंग पर्वत-श्रेणी है । ऐसा माना जाता है कि प्राचीन काल में ऋषि-मुनि-तपस्वी आश्रम बनाकर रहा करते थे । उन ऋषियों को लोग गुरु कहते थे , लिहाजा वहां की भूमि "गुरूस्थली" के नाम से विख्यात हुई । कुमाऊं में उसका एक अपभ्रष्ट नाम "गुरूखली" भी प्रचलित है ।[28]

अल्मोड़ा जिले में ही अल्मोड़ा शहर से करीबन अठारह मील की दूरी पर जागेश्वर-नागेश्वर नामक भगवान महाकाल का प्रसिद्ध मंदिर है । यहां प्रस्थापित महाकाल को "जागनाथ" भी कहते हैं । इसके अलावा अल्मोड़ा से गालिबन 20-21 मील की दूरी पर वृद्ध जोगेश्वर और बाल-जोगेश्वर नामक दो मंदिर है । यहां के लोगों में ऐसी एक जनश्रुति प्रचलित है कि भगवान शंकर के जागेश्वर मंदिर में दीपक जलाने से बांझ स्त्री को पुत्र-प्राप्ति होती है । अतः जिन स्त्रियों के संतति नहीं होती है ऐसी संतानोत्सुक स्त्रियां सात या नौ रात्रियों तक अंजलि में जलता दीपक लेकर यहां खड़ी रहती हैं । इसको "दीपक लेना" कहते हैं । संतान की प्राप्ति पर जागेश्वर के मंदिर में "बधाई" दी जाती है । यह परंपरा अभी तक चली आ रही है । "सुख सरोवर के हंस " उपन्यास में महारानी भद्रावती पुत्र-प्राप्ति के लिए इसी मंदिर में "दीपक लेती " है । [29]

कुमाऊँ के लोकदेवताओं में "त्रिदेवताओं" के अंतर्गत गोल्ल देवता का भी स्थान है, जिनका जिक्र ऊपर हो चुका है। पिथौरागढ़ की ओर पड़नेवाली ढलान चितई के बहुश्रु× बहुश्रुत राजवंशी लोकदेवता "गोल्ल" का मंदिर है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ "बोकिया" (बकरा) चढ़ाने से हमारी मनोगत इच्छाएँ पूरी होती हैं। "चौथी मुट्ठी" उपन्यास की एक नायिका (एक माँ) कौंतिला अपने जुल्मी सास-ससुर और सौतन पर "घात" लगाने के लिए चितई के इसी मंदिर में आती है। "घात लगाना" एक तांत्रिक टोटका है। किसी व्यक्ति को अभिशाप देने के लिए उसका प्रयोग होता है। जिस पर "घात" लगायी जाती है, उसका अहित होता है। गुजरात में इसीको "मूठ मारना" कहते हैं। उपन्यास का शीर्षक "चौथी मुट्ठी" इसलिए है कि कौंसिला अपने सास-ससुर-सौतन और पति के जुल्मी व्यवहार से तंग आ गयी है, अतः अंतिम उपाय के रूप में वह इस मंदिर में "घात लगाने" आती है और सास-ससुर-सौतन के नाम की तीन घात तो वह दे देती है, किन्तु पति के नाम की " चौथी मुट्ठी" अधर में ही रह जाती है। उसके भारतीय संस्कार उसको ऐसा करने से रोकते हैं।[30]

मटियानीजी के कुमाऊँ पृष्ठभूमि के उपन्यासों को देखे जाने पर एक दूसरा अजीबोगरीब तथ्य सामने आता है। पर्वतीय प्रदेशों में शक्ति-पूजा के कारण देवियों का विशेष महत्त्व है। फिर भी उनके आलोच्य उपन्यासों में "भाना" को छोड़कर किसी अन्य देवी के अवतरने का उल्लेख नहीं मिलता है। "भाना" कुमाऊँ के लोकदेवता "गंगनाथ" की पत्नी हैं। "हौलदार" उपन्यास की गोपुली काकी में "भाना" का अवतरण बताया गया है।

उक्त देवताओं से सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दावली को समझ लेना भी आवश्यक है। ऐसा ही एक शब्द है — बैसी। जब देवी-देवताओं को कुछ दिनों के लिए अपने घर में बिठाया जाता है तो उसे "बैसी" कहते हैं। "बैसी" लगातार बाईस, ग्यारह या सात दिनों तक लगती है, जिसमें ऐ धूनी जलाई जाती है। वहाँ गाँववालों के

संयुक्त प्रयास से लोकदेवताओं का "अवतार" करवाया जाता है । "बैसी" रात को ही लगती है । "बैसी" के देवता भी विशेष होते हैं । "बैसी" के कुछ देवता "जागर" में अवतार नहीं लेते और "जागर" के कुछ देवता "बैसी" में अवतार नहीं ले सकते ××× ।

डंगरिया और जगरिया : जिस व्यक्ति-विशेष के शरीर में देवता का अवतरण होता है, उसे उस देवता का "डगरिया" कहा जाता है । ऊपर इस शब्द की व्युत्पत्ति का संकेत दिया गया है । गुजरात में इसे "भुवा" कहा जाता है । जो व्यक्ति देवता के अवतरण के आखर या छंद पढ़ता है, उसे "जगरिया" कहते हैं । उसमें जिस वाद्य का प्रयोग होता है उसे "हुड़का" कहते हैं । गुजरात में उसे "डाकली" कहते हैं । गुजरात में इसी "जगरिया" को "जागरिया" कहा जाता है । जो नया-नया डंगरिया होता है, उसे "नौताड़ डंगरिया" कहा जाता है । बहुतों को इसमें भी आश्चर्य होगा कि यहां भी "वरीयताक्रम" (Seniority - order) का बराबर ध्यान रखा जाता है ।

इसीसे संबंधित और पारिभाषिक शब्द : देवताओं को अवतरित करवाने के लिए जिन पदों या छंदों को गाया जाता है उनको "औताण" कहते हैं । दो डंगरियों के के मिलन को "देवालिंगन" कहते हैं । "होलदार" उपन्यास में गोपुली काकी देवालिंगन द्वारा समराजा के डंगरिया हरकसिंह के "पद्मासन" को खुलवा देती है ।[3] जिस व्यक्ति में देवता अवतरित होते हैं उसे उस देवता का "घोड़ा" भी कहा जाता है ।[32] जब लोकदेवता का अवतार होता है, तब उनके अवतार काल में श्रद्धालु भक्तों द्वारा जो प्रश्न उपस्थित किए जाते हैं, उन पर लोकदेवता विचार करते हैं । प्रश्न पूछने का ढंग यह है कि प्रश्न पूछने वाला व्यक्ति प्रश्न को अपने मन में सोचकर चावल के कुछ दाने देवता के सामने रखी दीपक की थाली में छोड़ देता है । उसे देखकर लोकदेवता उसके प्रश्न का उत्तर देते हैं । इस प्रक्रिया को "दाणी रखना" और "दाणी देखना"

कहते हैं । कई बार प्रश्न पूछे बाद "दाना" देखकर जवाब दिया जाता है । गुजरात में भी इसे "दाणा जोवा" कहते हैं । गुजरात में चावल के दानों के स्थान पर कहीं-कहीं गेहूं के दाने या ज्वार के दाने भी देखे जाते हैं । लोकदेवता जब प्रचण्ड अवतार का रूप धारण करते हैं, तब नीबू या दाडिम उनके हाथ में दिया जाता है, जिसे वे किसी संतान-प्रार्थिनी निस्संतान स्त्री के आंचल में डाल देते हैं । इससे वह स्त्री संतानवती होगी ऐसा माना जाता है । इस प्रक्रिया को " फल देना" कहते हैं ।[33] जब डंगरियों पर लोकदेवता आते हैं तब वे महिलाओं को "स्यूनारी" और पुरुषों को "स्योंकार बाबू " शब्दों से संबोधित करते हैं, जिसे पूर्ववर्ती पृष्ठों में बताया गया है । जब "दाणी देखना " तथा लोगों का पूछना आदि बन्द हो जाता है और जिस उद्देश्य से लोक-देवता का अवतार करवाया हो उसकी पूर्ति हो जाती है, तब लोक-देवता अपने-अपने लोक में प्रस्थान कहx करते हैं । तब डंगरिये अपनी ऊंगलियों की कैंची फंसाकर " आदेश " ऐसा कहते हैं । लोकबोली में इसे लोकदेवता का "कैलासवासी होना" या " घरी जाना" कहते हैं । इस समय के "औसाण" को "कैलासप्रस्थानी" औसाण कहाजाता है ।[34] कुछ लोकदेवताxइसxइस ढोल बजाने पर आते हैं, तो कुछ "हुडका" । गुजराती में इसी "हुडके" कोx! " डाखला" कहा जाता है । जब विवाह आदि शुभ प्रसंगों पर ढोल बजाते हैं, तो बजानेवालों को "ढोली" कहा जाता है । गुजरात में भी उसे "ढोली" ही कहा जाता है । किन्तु ये लोग ही जब लोकदेवता का अवतार करवाने के लिए ढोल बजाते हैं, तब उनको "दास" कहा जाता है ।[35] ढोल प्रायः शूद्र जाति केलोग बजाते हैं । गुजरात में "रावळिया", "कोळी", "नट" आदि निम्न जाति के लोग यह काम करते हैं ।

<u>लोक-मान्यताओं तथा अंध-विश्वास और उससे सम्बद्ध शब्दावली :</u>

"अंध-विश्वास" ग्रामीण परिवेश का एक अविच्छिन्न आयाम है । धर्म में विश्वास होना अच्छी बात है, परन्तु इसे एक विडंबना ही

समझना चाहिए कि हमारे यहां इसी धर्म को लेकर अनेक प्रकार के अंध-बिश्वस विश्वास चलते है जिनके रहते कई बार मानव-जाति का भयंकर नुकसान होता है । कुमाऊं के ग्राम्यजनों में यह विश्वास या अन्धविश्वास घर कर गया है कि चित्तई के गोल्ल देवता के मंदिर में बोकिया का संकल्प देकर अगर घात दी जाए तो शत्रु-पक्ष का विनाश हो जाता है । "चौथी मुट्ठी" उपन्यास की कौशिला अपने ससुरालवालों से बहुत दुःखी है । उसका पति फौज में है । घर में खेतीबाड़ी है । गांवों में यह अक्सर पाया जाता है कि जिस परिवार का कोई एक व्यक्ति यदि सरकारी नौकरी में होता है तो एक निश्चित व नियमित माहवार आमदनी होने से उन लोगों की खेतीबाड़ी भी अच्छी होतिर है, फलतः थोड़े समय में ऐसा परिवार आर्थिक दृष्टया ऊपर उठ जाता है । अल्मोड़ा का रतनसिंह डोंगरी, रतनवा डोंगरी से अब "रतन सैप" हो गया था और उसके साथ ही उसकी दुर्जनता भी रंग ला रही थी । अपने फौजी बेटे गुमानसिंह को चढ़ाकर वह पुत्रवधू कौशिला को बहुत त्रास देता है । उसमें उसकी पत्नी भी उसे साथ देती है । कौशिला की छाती पर मूंग दलने के लिए वह उसके ऊपर एक सौत बिठाना चाहता है । अतः अपने सास-ससुर, सौत और पति को घात देने के लिए वह इसी चित्तई के गोल्ल देवता के मंदिर में आती है —" हे गोल्ल देवताओ, जिस सौत रांडी को मेरी छाती पर बिठाकर, मेरे अन्यायी सौर, खसम और सासू-सौत रांडिया आज मेरे तन-बदन में आग जैसी लगाकर, मेरा धुआं जैसा देख रही हैं — होगा तू निसाफी परमेश्वर, इनका धुआं बिश्नाथ के ॥रडxसेx श्मशान घाट से उठता हुआ मुझे भी दिखा देना ।" [36] गोल्ल देवता तो पुरुष लोक-देवता है । पर गुजरात में प्रायः माता की घात दी जाती है, जिसे लोकबोली में "माता मुकवी" कहते हैं और लोग-बाग इसी वहम में कई बार ह्रि दर्दों का सही इलाज कराने के बदले डंगरियों-जगरियों के जाल में फंस जाते हैं । इसी चक्कर में कईबार व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाती है ।

"हौलदार" उपन्यास में केशरसिंह नामक व्यक्ति की पत्नी कदाचित् किसी स्त्री-रोग से पीड़ित है, फलतः वह हमेशा-हमेशा बीमार रहती है। उसे किसी अच्छे डाक्टर को दिखाने की अपेक्षा "पद्मासनी सैमराजा" से "दाणी का विचार ●" करवाया जाता है। यथा —
"कि केशरसिंह की घरवाली को कोई फूल-फल तो फूटना नहीं है, उलटे हजार किसम के छम-बिछम होते रहते हैं। आज कफिलगैर का मसाण लग गया है ﴾अर्थात् श्मशान का कोई पिशाच लग गया है﴿, रे आज फलानी धार का "तुड़तुड़े ड़िया भूत" लग गया है, आज फलाने जंगल की विध्वंसी जोगन की पकड़ हो गई है। ... महापराक्रमी पद्मासनी सैमराजा हो, दाणी का विचार कर लेना, दुख हर लेना, सुख भर देना, सुखियारी राह दे जाना, हो परमेश्वर मेरे ठाकुर बाबा।"[37]

कुमाऊँ के ग्राम्य-विस्तारों में यदि कोई रोग लम्बा चलता है, तो रोग-मुक्ति के लिए या किसी दुःख या विपत्ति को टालने के लिए "उचैण रखा" जाता है। कभी मन में यह आशंका होती है कि कहीं किसी भूल-चूक के कारण किसी देवता का कोप तो नहीं है, यह प्रक्रिया होती है। "उचैण" में मुट्ठीभर चावल या पैसे रखते हुए यह प्रार्थना की जाती है "कि परमेश्वर हो रोग-शोक दूर कर देना, कोप शान्त करना। अगर हमारी पुकार तूने सुन ली है तो तेरी पूजा अमुक ढंग से, अमुक दिन करेंगे।"[38]

त्रिलोकसिंह और माधोसिंह दो भाई हैं और धौलछीना गांव के रहने वाले हैं। एक बार माधोसिंह की औरत घास काटते हुए खड्डे में गिर जाती है और त्रिलोकसिंह की कमर में "बाई" ﴾पक्षाघात या लकुआ﴿ पड़ जाता है। ये दोनों घटनाएं जोगानुजोग लगभग एक साथ घटित होती हैं, तो गांव के लोग इसका कारण यह बताते हैं कि इन दोनों भाइयों ने वचन देकर "सैमपूजा" टाल दी थी। इसलिए सैमराजा कोपित हुए हैं और उनको उनके किए की सज़ा दे रहे हैं। गुजरात में इसे "बाधा" या "आखड़ी" रखना कहते हैं और उसमें भूल-चूक होने पर

"देवकोप" की आशंका को जताया जाता है । आजकल बहुत से लोग अचानक हृदयरोग से या अन्य कारणों से मृत्यु पाते हैं, पुराने समय में गांवों में ऐसे किसी भी मौत में "देवकोप" या भूत-प्रेत या डाकिन द्वारा खा जाने की आशंका बताई जाती थी । दीर्घ बीमारी में गांवों में डंगरियों और जगरियों की जमात जुट जाती है और महीनों देवता-पूजा या भभूत -कंकन होता रहता है, उसे "देपत्यौल" कहते हैं । कोई व्यक्ति यदि भूत की चपेट में आ जाए तो उसे "भूत-पकड़" और यदि वह किसी देवता का कोपभाजन होता है तो उसे "देव-पकड़" कहते हैं ।

मान्यताएं :

ग्रामभित्तीय परिवेश के निर्माण में लोकमान्यताओं का महत्त्व भी असंदिग्ध है । उससे जुड़े हुए कुछ शब्द भी होते हैं । हमारे अध्ययन के मूल में भाषा का अध्ययन है, अतः यहां ऐसी कतिपय मान्यताओं को सूचीबद्ध किया गया है :—

§1§ ग्रामीण लोगों का मानना है कि बच्चों का कद नींद में ही बढ़ता है, और जब कद बढ़ता है तो उनको उड़ान भरने के सपने आते हैं ।

§2§ कुमाऊं में ऐसी भी एक मान्यता है कि बच्चे तो पूस बीते के ही अच्छे होते हैं, अर्थात् वह बच्चा अच्छा माना जाता है जो पूस महीने के बीत जाने पर होता है । अतः यहां एक कहावत प्रचलित है — " पूस की पालक, माघ का बालक । "

§3§ कुमाऊं प्रदेश की स्त्रियों में ऐसी मान्यता है कि बच्चे को दूध पिलाते समय यदि उसकी "महतारी" रोती है या आंसू बहाती है तो उसके बच्चे की आंखों की ज्योति धुंधला जाती है ।

§4§ कुमाऊं प्रदेश में एक और बढ़िया कहावत है — " शनि, सुरा और सौन्दर्य को जाते-जाते बहुत दिन लग जाते हैं । "

§5§ गोल्ल देवता के दरबार में अपने शत्रुओं को "घात" देने के लिए " काले बोकिया " का "भाखना" बहुत जरूरी माना जाता है ।

§6§ कुमाऊं प्रदेश में कुछ अपशकुन बड़े प्रचलित हैं , उनमें "काने" व्यक्ति का सामने से आना , कौए का बोलना और असमय सियार का बोलना शामिल है ।

§7§ कुमाऊं प्रदेश में शनिवार का दिन देवता के मंदिर में जाने के लिए जितना शुभ माना जाता है , किसी आदमी के घर जाने के लिए वह उतना ही अशुभ माना जाता है और शनिवार को यदि कोई आ जाए तो उसे अशगुन माना जाता है और उसके निवारण के लिए उसके चले जाने पर , उसका नाम लेकर , सात बार "थू थू" करते हुए घर की देहलीज पर अपना बांया पांव पटका जाता है । हिन्दी भाषी क्षेत्रों में कहीं-कहीं गुरुवार को "हुलायता वार" कहा जाता है , अर्थात् कोई भी शुभ काम के लिए गुरुवार अच्छा माना जाता है , क्योंकि "हुलायता" का अर्थ है बार-बार आना । यदि ऐसे वार पर कोई शुभ या मांगलिक काम किया जाए तो ऐसे प्रसंग बार-बार आते हैं । किन्तु बरअक्स इसके यदि कोई अशुभ काम किया जाए तो ऐसा माना है कि अब बार-बार ऐसे अशुभ काम होते रहेंगे ।

§8§ कुमाऊं प्रदेश में एक विशिष्ट किस्म की घास होती है । इस घास को बकरा खोज-खोजकर खाता है , किन्तु बादमें पचा नहीं पाने पर बहुत परेशान होता है । अतः यदि कोई व्यक्ति बात-बात में बिदकता है तो कहा जाता है कि क्या "तितपाती" खा ली है , क्योंकि उस घास का नाम "तितपाती" है ।

§9§ कुमाऊं के किसानों में ऐसी मान्यता है कि गोरैया के पूत खेतों के अन्न को अपना ही समझते हैं , इसलिए पंख लगते ही खेतों में

P/Th 11417

HANSA MEHTA

पहुंचकर फसल को नष्ट करने वाले कीड़े-मकोड़ों को खाना शुरु कर देते हैं ।

§10§ कुमाऊं प्रदेश में दो पक्षी होते हैं — घुघुत और सिटौला । घुघुत का मांस खाया जाता है, किन्तु सिटोला का मांस अखाद्य समझा जाता है ।

§11§ एक जनश्रुति के अनुसार तिमिल के फूल ~~ममोसे×महीं×है×~~ रात को लगते हैं और लोग उनको देखें उसके पूर्व ही वे फल में परिवर्तित हो जाते हैं । यों शायद तिमिल के फूल होते नहीं है ।

§12 § कुमाऊं प्रदेश में एक कहावत है — " तीन तिकट महा विकट " — अर्थात् तीन का अंक वे शुभ नहीं मानते । किसी शुभ या मंगल कारज में तीन व्यक्ति कभी जाते नहीं हैं । तीन की गिनती में तिमुखिया त्रिशूल बुरा, किरमड़ का कांटा बुरा जो चुभने के बाद पांव के अन्दर ही रह जाता है, और तीन दशाएं बुरी — राहु, केतु और शनि । इसके संदर्भ में कहावतें है — राहु न लेने दे थाहु, केतु न पड़ने दे चैतु और शनि करें कुछ-न-कुछ सनि-फनि अर्थात् उलटफेर । गुजरात में भी तिकोनिया खेत अच्छा नहीं माना जाता है और एक ऐसी मान्यता है कि तिकोनिया खेत पर बिजली गिरने का खतरा सबसे ज्यादा होता है ।

§13§ कुमाऊं प्रदेश में लोग अपने कार्य की सिद्धि हेतु देवी-देवता को "बोकिया" चढ़ाते है, यह तो पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है । जब बलि चढ़ाने की होती है तब बकरे के कानों में देवता के नाम का संकल्प-जल छोड़ा जाता है । और प्रार्थना की जाती है कि इस बकरे की बलि तेरे मंदिर में देंगे, कि तू हमारे दुःख के दूर करना, कि अपना कोप शांत करना । ऐसा करते समय यदि बकरे का रुण्ड-मुण्ड कंपकंपाने लगता है, तो माना जाता

है कि देवता ने बलि को स्वीकार कर लिया । इसीको बकरे का "आंगमून" लेना कहते हैं ।

§14§ कुमाऊं प्रदेश में जब कोई लड़की पहली बार रजस्वला होती है , या कोई औरत संतानवती होती है , तो बाद में उसकी शुद्धि के लिए "पंचगव्य" तैयार किया जाता है । यह "पंचगव्य" गोमूत्र, गोबर , तिल , जौ और कुश से तैयार किया जाता है । इसे लोक-बोली में "पंचगव" या "पंचकव " कहते हैं । शायद इसीको गुजरात में "चरणामृत" कहते हैं ।

§15§ कुमाऊं प्रदेश में एक ऐसी भी मान्यता है कि अविवाहित पुरुष और संतानहीन लोगों की इस लोक से मुक्ति नहीं हो पाती और जब वे मर जाते हैं तब प्रेतयोनि में जाते हैं और हाथ में मशालें लेकर अपने लिए पत्नी या संतति खोजते हुए टोले बनाकर प्रेतरूप में भटकते हैं । परन्तु साथ में यह भी विधान है कि ऐसे किसी व्यक्ति की मृत्यु के उपरान्त यदि शास्त्रोक्त विधि से उसकी सद्गति करवायी जाए तो वह "प्रेतयोनि" में नहीं जाता है ।

§16§ कुमाऊं प्रदेश के लोगों में एक ऐसी भी मान्यता है कि कैलाश पर्वत से पार्वती मैया सोनपालकी में बैठकर वन-खण्डों की सैर के लिए निकलती है । उस समय वह संसार के दीन-दुखियों की सहायता करती है । कुमाऊं की एक लोककथा के अनुसार ही रूपुली घुघुती ने राजकुमार-से सोनपंख घुघुत को जन्म दिया था । गुजरात की लोककथाओं में इसे "ईश्वर-पार्वती" का रथ कहते हैं । यहां केवल पार्वती मैया निकलती हैं , जबकि गुजरात की लोककथाओं में शंकर और पार्वती दोनों निकलते हैं । प्रायः कथाओं में ऐसा वर्णन मिलता है कि महादेव तो दीन-दुखियों को विधि-विधान मानकर टाल जाते हैं , किन्तु पार्वती मैया

का दिल जल्दी पसीज जाता है और उनके आग्रह पर महादेव को उनके दुःख-दर्द दूर करने पड़ते हैं । 39

कुमाऊं प्रदेश के कतिपय तीज-त्यौहार और संस्कार और उनसे सम्बद्ध शब्दावली :

हमारे यहां "उत्सवप्रियाः जनाः " कहा गया है, अर्थात लोगों में उत्सवों और त्यौहारों के प्रति एक विशेष प्रकार का लगाव पाया जाता है । ग्रामीण प्रदेश के गरीब लोगों में यह लगाव अधिक होता है । इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी हो सकता है कि अमीरों को तो हमेशा अच्छा खाना मिलता है, अपनी पसंद का खाना मिलता है, या वे जब चाहें पार्टियां मना सकते हैं; किन्तु गरीबों को तो केवल तीज-त्यौहारों पर ही अच्छा खाना और अच्छे कपड़े नसीब होते हैं । खैर जो भी हो, हमारा मकसद यहां इनसे सम्बद्ध भाषा और शब्दावली से है । अतः हम अपना ध्यान उस पर ही केन्द्रित करेंगे ।

कुमाऊं प्रदेश के पर्वतीय-ग्रामीण अंचलों में भी बावजूद गरीबी के तीज-त्यौह ारों के प्रति विशेष ललक देखी जाती है । कुमाऊं प्रदेश का एक ऐसा ही प्रसिद्ध त्यौहार है -- घुघुतिया त्यौहार । यह त्यौहार माघ की संक्रान्ति को मनाया जाता है । इसमें छब्बेxx छोटे-छोटे बच्चे घुघुतों की माला पहनकर; घुघुत और दाल-भात-बड़ा आंगन में रखकर कौओं को न्योतते हैं । यथा -- " काले कौए, काले कौए; दाल-भात-हलुवा-पूरी खा ले कौवे । " 40 कहीं-कहीं " ले कौवा पूड़ी, मेरे हाथों को ला सोने की चूड़ी । " 41 ऐसा भी कहा जाता है ।

भारत के अन्य प्रदेशों की तरह वसंत ऋतु का त्यौहार भी यहां खूब धामधूम से मनाया जाता है । " छरड़ी " के दिन कुछ ऐसे जोड़ (छंद) सुनाये जाते हैं , जिनमें कुछ भदेसपन भी पाया जाता है । कुछ लोग उन्हें अश्लील भी कह सकते हैं । इन जोड़ों का "खड़ी होलियो" कहा जाता है और जो पंचम् – सप्तम् सुरों में पढ़े जाते हैं । इन दिनों में " पहाड़ी खड़ी ~~xxxxx~~ होलियो " की बुकलेट की लगभग एक-डेढ़ हजार प्रतियां बिक जाती हैं । [42] आश्वीन और कार्तिक की ~~नवxxx~~ नवरात्रियों में यहां रामलीलाएं होती हैं । असोज के "नोर्तो" " में कहीं-कहीं बैसी भी लगती है जिसमें गोल्ल गंगनाथ , राजजोगी गंगानाथ गुसांई , सैमु राजा जैसे लोकदेवताओं के पूर्णावतार करवाए जाते हैं । इन दिनों में ही चितई के "गोल्ल" देवता को "बोकिये " की बलि दी जाती है । कुमाऊं प्रदेश में अधिकांश लोग फौज में होते हैं , ये फौजी , या अन्यत्र कहीं नौकरी करने वाले लोग , जब छुट्टियों में अपने-अपने घर जाते हैं , तब उनके घरवाले प्रायः " जागर " करवाते हैं । ये जागर के बोल भी बड़े सुनने लायक होते हैं । यथा —

" हे प्रथम ध्यान मैं किसका करता हूं ? तो ध्यान करता हूं , उस चौमुखी बिरंचि विधाता का , मैया महाकाली , जिसने कि अपूर्व ~~xxxxx~~ सृष्टि की , और आकाश की जगह आकाश , धरती की जगह धरती और पहाड़ की जगह पहाड़ , नदी की जगह नदी , अग्नि की जगह अग्नि और क्या नाम , माता गौरी , शंकरी , खप्परधारिणी कि पानी की जगह पानी को उत्पन्न किया । और कि फूल को पत्तों और दूध को कटोरे के आधार पर रखा । हाड़-मांस के पुतले में रखी प्राणों की संजीवनी । ..... अहा रि मैया सिंह वाहिनी , — कैसी अपरंपार हुई सृष्टि कि सारे ब्रह्मांड में एक महाशब्द व्याप्त हो गया । मनुष्य तो मनुष्य , पाताल में का पक्षी भी " मैं यहां , तू कहां " ~~xxxx~~

गाता दिखाई दिया । कहीं ऊंचा हिमालय , कहीं मैला समुन्दर । कहीं धूप , कहीं छाया । कहीं मोहनी रखी , कहीं माया । बिरंचि के बाने सृष्टि रची , विष्णु के रूप पोषण किया और शिव के रूप में संहार — दूसरा स्मरण तेरा है माता भगवती , कि तूने जब गौरी पार्वती से माया का रूप महाभद्रा-महाकाली रखा , तभी संहार किया महिषासुर का और तभी स्थापना हुई तेरी भी हाट की कालिका, घाट की जोगिनी के रूप में ।" 43

चैत के महीने में भाई या पिता — या कभी-कभी मां-बहन भी — अपनी विवाहिता बहन या बेटी को भेंटने जाते हैं , जिसे भिटौली कहा जाता है । भिटौली में प्रायः टोकरी-भर पूरियां , जिस गांव में बहन-बेटी ब्याही हो , उस गांव के प्रत्येक घर में बांटी जाती है जिसे "भिटौली की पूरी " कहते हैं । बालक जब अन्न खाने लगता है , तब "अन्न-प्रासनी" संस्कार करवाया जाता है । उसे "प्रासनी" भी कहते हैं । इसमें कई लोगों को "अन्न-प्रासनी" का न्यौता दिया जाता है । बच्चे के नामकरण के प्रसंग पर "नामकन-चौका" का संस्कार होता है । उस दिन बालक का पिता हल्दी-पुते चौके पर पगड़ी बांधकर बैठता है । पिता की अनुपस्थिति में बालक का चाचा भी "नामकन-चौके पर बैठ सकता है । बेटी के ब्याह को "कन्यादान-संस्कार " कहा जाता है । कुमाऊं प्रदेश में लड़की का ब्याह सचमुच में "कन्यादान" ही होता है , क्योंकि यहां बहन-बेटी का ब्याह उनके रजस्वला होने के पूर्व ही , अर्थात् कन्यावस्था में ही , करवा दिया जाता है । रजोधर्म के उपरांत यदि किसी लड़की का पिता उसकी शादी करवाता है तो वह नरकगामी होता है ऐसा माना जाता है । उच्च जातियों में दहेज या तिलक के कारण गरीब घरों की लड़कियां कई बार अविवाहित रह जाती हैं । ऐसी स्थिति में उनके मां-बाप या अभिभावकों की सद्गति नहीं होती है , ऐसा माना जाता है । परिणामस्वरूप वे लोग अपनी सद्गति के लिए

लड़की का विवाह एक घड़े के साथ कर देते हैं , इसे "घटविवाह" कहा जाता है । इस "घटविवाह" की भी एक विशिष्ट पद्धति होती है । बिल्व-पत्र के तोरण बांधे जाते हैं । उनके बीच में विशेष मंत्रों से अभिषिक्त ताम्रघट रखा जाता है । उसके मुहाने पर दूब के तिनके और जवाकुसुम के फूल रखे जाते हैं । तांबे के घड़े पर भगवान विष्णु की आकृति बनायी जाती है , फिर उसीसे अविवाहित कन्या का विवाह संपन्न कराके माता-पिता ऋणमुक्त हो जाते हैं । मटियानीजी के किसी उपन्यास में तो इस विधि का कोई उल्लेख नहीं मिलता है , किन्तु मटियानीजी की "सुहागिन" कहानी इसी विषयवस्तु पर आधारित है ।

जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है , तब उसका पुत्र " बौज्यूहो" (पिता हो) कहते हुए उसकी अर्थी को कंधा देता है , इसे "संस्कार देना" कहते हैं । मरने वाले व्यक्ति का यदि यज्ञोपवित हो गया है , तो अर्थी पर रखने से पूर्व उसकी पुरानी जनेऊ उतार ली जाती है और उसके शव को नयी जनेऊ पहनाई जाती है । पुरानी जनेऊ को एक पत्थर पर रख दी जाती है । इससे कुमाऊं प्रदेश में एक मुहावरा प्रसिद्ध है -- " तेरी जनेऊ पत्थर पर रह जाय । " " तू मर जाय ऐसा अभिशाप देने के लिए " इसका प्रयोग होता है । ~~अखुरसर~~ गुजरात में कहते हैं -- " तारी ठाठड़ी निकळे । "

गालीवाचक शब्द :

गालियां ग्रामीण परिवेश की अपनी पहचान है । मटियानी जी के उपन्यासों में भी इस तरह की कई गालियां पायी जाती हैं जिनका प्रयोग कुमाऊं में बहुतायत से होता रहा है । यथा -- कुवचनिया, बारह पाट का घाघरा और सात मोड़ का आंचल (गुजरात में ऐसी एक कहावत है -- बार हाथनुं चिभडुं ने तेर हाथनुं बी तथा बार बारिया ने तेर उका) , तेरी जनेऊ पत्थर पर रह जाय , रांणी का

छोरा , अपजसिया , दैत्यवंशिनी चुड़ैलें , रांडियो , डंकिपियां , निगरगण्ड , सात जगह से फटना , चंट गोबी ; ले जाये अलमोड़ा का धोबी , फुटखोलिया , सिरफुटे , नादिया (सांड) , खसिया , चमार-चित्त , मुस्यार (मां का खसम) , बिन T गुसाईं के सांड , तेरा सांड शरीर फलियागैर के मसाणघाट पहुंच जाय , तेरी ऐसी-तैसी मारूं , जतिया , तेरे मुंह में कुतिया पिशाब करे , तेरा ठौर खाली हो जाय , मार साले की खाल में भूसा भर दूंगा , तेरी महतारी की मौत हो जाए , अपने बाप रंडुवे की जोरू होना , मुस्तण्डी , छिलेक जैसे भवां-भवां जलना , डांडी काफलिया गैर के मसानघाट चली जाए , पापी पेट में हाथ-हाथ भर के लमपुंछिया कीड़े पड़ जाय , कठुआ लिना , खसिया खोड़ा , चानी के बालों का पता न चलना , कुहेड़िया ;[44] लाल बस्तुर से ढंकी झांझी बिशनाथ के शमसान घाट पहुंचे , हाथों को लखुवाबाई (पक्षघात) पड़ जाय , छाती की हाड़ी में लंबे-लंबे गुजिया कीड़े पड़ जाय , बमकुवा चुतड़ों की चर्बी उतारना , करीम मास्टर के लमखटे जैसी चट्टुवा जबान , पपीतों को पिटना , कद्दू उखाड़ लेना , कानों में कलसांगलियां ठुसना , भड़वा साला , मुंह में मूत देना , बूचड़ कसाई , मुंह में हगना , चमार स्साला , गुद्दी फोड़ देना , तेरी मां को ... के रख दूंगा , आंखें गिद्धों को खिलाना ।[45]

यहां हम देख सकते हैं कि हगना , मूतना , मरना , जात-पांत आदि को लेकर ज्यादातर गालियां पाई जाती हैं । किसीके नाम के साथ जोड़कर भी गाली देने का रिवाज है , जैसे तेरी मां को या तेरी बहन को , या तेरी औरत को अल्मोड़ा का करीम मास्टर ले जाए । गुजरात में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है । "भवाई " के एक जोड़ में कहा गया है — " आजुबाजु झाडवां ने वचमां उग्यो आंबो , मोहना तारी माने लैग्यो पेलो लाखो लांबो । .... मारा रोया रखडवानी टेव छे । "

लोकोक्तियों और कहावतों का प्रयोग :

नगरीय परिवेश और ग्रामीण परिवेश का एक बहुत बड़ा अंतर यह होता है कि ग्रामीण परिवेश में प्रयुक्त भाषा लोकबोली होती है। वह पुस्तकीय भाषा नहीं होती, बल्कि अनुभव-पगी भाषा होती है। ग्रामीण लोग बात-बात में लोकोक्तियों या कहावतों का उपयोग करते हैं। अतः यह देखा जा सकता है कि जो भी लेखक अपने क्षेत्र से, अपनी जमीन से, अपनी भाषा, बल्कि अपनी बोली से, जितना ही ज्यादा जुड़ा हुआ होगा उसकी भाषा में लोकबोली के शब्द, लोकोक्तियाँ, कहावत और मुहावरे, उतने ही ज्यादा परिमाण में मिलेंगे। इस संदर्भ में डा. रामदरश मिश्र के निम्नलिखित अभिमत को देखना उपयुक्त रहेगा —

" भाषा ऊपर से ओढ़ी हुई चीज़ नहीं होती, वह स्थान-विशेष के लोगों के संस्कारों और अनुभूति के साथ अनिवार्य भाव से संपृक्त होती है। अतः कुछ शब्द और मुहावरे इस प्रकार वहां के जीवन-सत्यों के साथ जुड़े होते हैं, कि वे सत्य-विशेष के साथ स्वतः लगे हुए चले आते हैं। उनका अनुवाद होता है परन्तु अनुवाद भावों, अनुभूतियों या सत्यों की मूल गंध को वहन करने में असमर्थ होता है। विशेष प्रकार की अनुभूति को कहने के लिए जब हमारी तथाकथित साहित्यिक भाषा में ठीक-ठीक शब्द नहीं मिलते तब स्थानीय शब्दों का प्रयोग लेखक की अनिवार्य विवशता हो जाती है। सैद्धान्तिक रूप से भी इसमें बुराई क्या है ? भाषा तो बहता नीर है। वह बोलियों के शब्दों को समेटकर ही शक्तिमान बन सकता है। मसलन खड़ी बोली हिन्दी में अपने शब्द कितने हैं जो हमारे समूचे जीवन की विविध वास्तविकताओं को व्यक्त करने में समर्थ हों ? विभिन्न बोलियों के शब्दों के प्रयोग से हिन्दी का शब्दकोश और भी समृद्ध होगा।" [46]

कहना न होगा कि प्रेमचन्द, प्रेमचन्द से भी पूर्व डा. शिवपूजन सहाय, नागार्जुन, रेणु और मटियानीजी ने हिन्दी भाषा को लोकभाषा

से मालामाल किया है ।

यह भी प्रायः देखा गया है कि अधिकांश लोकोक्तियों के पीछे कोई-न-कोई घटना या कहानी भी होती है । उदाहरण के तौर पर कुमाऊं प्रदेश की एक बड़ी ही चर्चित एवं प्रसिद्ध लोकोक्ति है — " हां कहूं तो हरसिंह के हाथ कटते हैं , और ना कहूं नरसिंह की म××× नार जाती है । " [47] अब इसके पीछे कहानी यह है कि एक गांव में हरसिंह और नरसिंह दो भाई थे । एक बार डाकू उनके घर में घुस आये । एक डाकू नरसिंह की पत्नी का हाथ पकड़ लेता है और कहता है कि अब तू मेरी घरवाली है , क्योंकि कल रात ही सपने में मैंने तेरे हाथों में हल्दी रचाई थी । उतने में हरसिंह की मां बोल पड़ती है कि हल्दी तो उसके देवर हरसिंह ने रचाई थी । तिस पर वह डाकू बुढ़िया से कहता है कि यदि हल्दी हरसिंह ने रचाई है तो मैं उसके हाथ काट डालूंगा , और यदि मैंने रचाई है तो मैं इसे ले जाता हूं । अब बोल बुढ़िया , हल्दी किसने रचाई ? इस पर बुढ़िया असमंसजस में पड़ जाती है । इधर कुआं इधर खाई वाली स्थिति आ जाती है । कहते हैं कि उस घटना के बाद कुमाऊं प्रदेश में यह लोकोक्ति शुरू हो गई थी । हालांकि मटियानीजी के उपन्यासों में कई लोकोक्तियां और कहावतें मिलती हैं , किन्तु यहां केवल उनको ही संजोया गया है जिनका संबंध कुमाऊं के लोकजीवन से है —

/1/ देश जाने से बेटा , खेत जाने से बैल सुधरता है ।

/2/ कलेजे के कान बड़े कोमल होते हैं ।

/3/ गुड़ चटा देने से डंक मारनेवाली मधुमक्खी भी उसके काबू में आ जाती है ।

/4/ गाय अपने लिए चरती है , बाछी अपने लिए ।

/5/ हाथी की सलाह शेरों की समझ में भले ही आ जाए , पर स्यालों [गीदड़ों] ने तो उसे पाद मारके उड़ा देना है ।

/6/ गंगासिंह गया तो सही , मगर हरसिंह के हिस्से का हलुवा छोड़कर ।

/7/ खरगोश अपने हाथ नहीं आया , न सही , गीदड़ों ने तो उसे खूब नोंच-नोंच के खाया ।

/8/ जब फल-फूल खतम हो गए , उस समय बानर बोट में चढ़ा ।

/9/ निगरगंड मोटा , नफा न टोटा ।

/10/ न आगे आनसिंग , न पीछे पानसिंग , टीकमसिंग की नज़र अपनी टांगों तक ।

/11/ मुंह लगाया कुत्ता , मुंह को चाटे ।

/12/ फल तोड़ने की कोशिश में पेड़ सिर पर गिरा ।

/13/ जिसका मुंह चले उसके नौ हल के बैल चले ।

xx14xx तुलना : गुज : बोले तेना बोर वेचाय ।

/14/ खूनी की चश्मदीद गवाही तो लाश खुद देती है ।

/15/ नहीं खानेवाली बहू-बेटियां तो बागेसर के मेले में पकड़ी जाती हैं ।

/16/ मधनसिंग चाहे अपनी मौत मरा , हरकसिंग के हाथों में तो हथकड़ियां पड़ ही गईं ।

/17/ पापी परमेश्वरा , जब हाथ न दिए , हलुवा काहे को दिया ?

/18/ जस जावे एक कोश अपजस जावे अट्ठार कोश ।

/19/ ढोल-नगाड़ों की धमाधम में मेरा हुड़का कौन सुनता है ? तुलना : नक्कारखाने में तूती की आवाज ।

/20/ जिस शेरसिंग के लिए सड़क तैयार करनी थी , वही पदमसिंग के साथ पगडंडी से खिसक रहा है ।

/21/ बचेसिंग के बालबच्चों को बचेसिंग की ही बेहोशी बरबाद कर गई । (48)

/22/ भिक्षा की चुटकी कितनी ? दान की मुट्ठी कितनी ?

/23/ मुट्ठी का अन्न , न फकीर की झोली में , न
X24X संन्यासिनी की चोली में ।

/24/ फल क्या पके , डाली तोड़ गए ।

/25/ वारुणी का बाण ढला हुआ , शीतल जल से संतुष्ट
नहीं होता ।

/26/ विधाता की मुट्ठी का सांप मुट्ठी के भीतर ही
मरता है ।

/27/ नकटे की नाक में पेड़ उगा , काटने को कहा , तो
छाया में बैठने का आसरा बताने लगा ।

/28/ धूप की सुवास कक्ष तक और नैवेद्य की मिठास मुंह तक
ही रहती है ।

/29/ आंव-गांव के खा गए , घर के गावें गीत । [तुलना:
गुज. घरनां छोकरां घंटी चाटे , उपाध्यायने आटो .]

/30/ " कुबेर के घर की कंगाली और धन्वंतरी का शूल " इसे
कहते हैं ।

/31/ जात का घोड़ा , औकात का बछड़ा ऐसा ही होता है ।

/32/ लकड़सिंगा सामने है तो कुल्हाड़ी की धार किसे दिखानी ?

/33/ न पाने वाले ने पाया , दिखा-दिखा के खाया ।

/34/ बीज बोया था फसल खड़ी , महतारी से बेटी बड़ी ।

/35/ बिच्छू के काटे का डाह कम होते ही , विषैले सांप ने
डंस लिया । [49]

/36/ अपने छौने को प्यार देते समय बाघिन अपने हाथों के
तीखे नाखून बाहर नहीं निकालती ।

/37/ कहीं सिर सलामत तो पगड़ी फटी हुई और कहीं पगड़ी
तुर्रेदार तो सिर नाशपीटा ।

/38/ जब आंखों से ही आंसू नहीं फूटे , तो घुटनों से
क्या फूटेंगे ? [50]

/39/ घर -घर मिट्टी के चुल्हे ।

/40/ कोई पाथर सहता तो वह भी पिसिया जाता ।

/41/ चार फल तीते , चार फल मीठे , हर वन में होते हैं ।

/42/ खाते राक्षस से लगता भूत अच्छा ।

/43/ पेड़ों में पेड़ तुण , मनुष्यों में मनुष्य बामुण ।

/44/ रस्ता बतावे पंडित तो जात्रा न होवे खंडित । 51

/45/ बुद्धिमान लोग चूहे के काटे को प्लेग बन जाने से रोकते हैं ।

/46/ बिना बोझ का तो जानवर भी कायदे से नहीं चलता ।

/47/ सयाना कौवा सबसे पहले टुन (चोंच) बिगाड़ता है ।

/48/ अकबर की दाढ़ी अकरम नोंचे ।

/49/ कब के जोगी , कब के जट्टा , ले मेरे साधो लट्ठमलट्ठा ।

/50/ काले बदरा दिन दस-पंदरा ।

/51/ बीबी मरे तो हलुवा , मियां मरे तो हलुवा ।

/52/ नाव डूबे तो डूबे , प्यारी पोटली न डूबे । 52

यहां जिन लोकोक्तियों और कहावतों को दिया है , उन पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि कुमाऊं प्रदेश में व्यक्तिवाची कहावतों की बहुतायत मिलती है । वहां के लोग "जोड" बनाने में बड़े माहिर होते हैं और इस तरह से कई बार हंसी-मजाक में भी कहावत बन जाती है । यथा -- खुमानसिंग को अपना खयाल भले न रहे , चनरसिंग की चिन्ता करेंगे ही करेंगे ।

कुमाऊं प्रदेश में कुछ शिक्षित-अर्द्ध-शिक्षित लोगों द्वारा अंग्रेजी शब्दों को जबरन ठूंसने की आदत :

मटियानीजी की भाषा-निरीक्षण शक्ति कितनी गजब की है , उसकी प्रतीति हमें यहां हुए बिना नहीं रहती । पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि कुमाऊं प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों से कई लोग फौज या सरकारी नौकरियों में हैं । वे लोग जब छुट्टियों में अपने गांव

जाते हैं तब दूसरे ग्रामीणों पर रुआब झाड़ने के लिए बात-बेबात अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं जो कई बार हास्यास्पद -सा लगता है । यहां एक दूसरा प्रसंग मेरी स्मृति में कौंध रहा है जिसके उल्लेख का मोह मैं संवरण नहीं कर पा रहा । हमारे गांव में भी एक सज्जन हैं जिनको ऐसे अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग की आदत है । उसका एक बड़ा ही मनोरंजक किस्सा यहां प्रस्तुत कर रहा हूं । एक बार वे सज्जन कहते हैं -- " धिस इज़ माय सेकण्ड-हैण्ड वाईफ । " । वस्तुतः वे कहना यह चाह रहे थे कि यह मेरी दूसरी पत्नी है । अपनी पहली पत्नी को वे तलाक दे चुके थे । इस प्रकार "सैकण्ड-हैण्ड" शब्द का सही अर्थ समझे बिना ही वे उसका प्रयोग कर गए और जाने -अनजाने अपनी बीबी पर गाली भी कस गए । यहां पर मटियानीजी के कथा-साहित्य से कुछेक ऐसे उदाहरण हम दे रहे हैं, केवल उनकी उस प्रवृत्ति की ओर संकेत-भर करने के लिए । उनका एक पहाड़ी चरित्र अपनी पत्नी को जो पत्र लिखता है उसमें "माय डीअर", "इंगलैंड लेटर", "लभलेटर", "ड्रोपिंग कर आऊंगा", "बाय एयरफोर्सिंग तेरे पास पहुंच जाऊं" आदि शब्दों का प्रयोग करता है । उसी प्रकार "भँवरे की जात" कहानी का रामसिंह हवालदार अपनी प्रेमिका कुंतुली को कहता है — " मगर बैकवर्ड पहाड़ी वाईफ तो मेरे साथ स्लीपिंग ही करती रही, रियली लभ करना तो तुमने मुझे टीच किया । "

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन के उपरान्त हम सहजतया निम्न-लिखित निष्कर्ष तक पहुंच सकते हैं :—

§1§ एक स्वप्नजीवी एवं स्मृतिजीवी कथाकार होने के नाते मटियानीजी अपनी कुमाऊं की धरती को पागलपन की सीमा

तक चाहते हैं । उनका यह लगाव उनके कुमाऊं की पृष्ठभूमि पर आधृत "होलदार" , " मुख सरोवर के हंस " , " एक मूठ सरसों " तथा "चौथी मुट्ठी " आदि उपन्यासों की भाषा के रचाव में भी श्रुतिगोचर होता है ।

§2§ अपनी इसी भाषा-शैली के कारण मटियानीजी का हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रहा है । प्रेमचंद , रेणु , नागार्जुन के पश्चात् अपनी जमीन से जुड़ी हुई भाषा हमें मटियानीजी के उपर्युक्त उपन्यासों में उपलब्ध होती है ।

§3§ अपने कुछ भाषागत विशिष्ट प्रयोगों के कारण कुछ आलोचक उन पर अश्लीलता का आरोप लगा सकते हैं , किन्तु मटियानीजी जैसे शब्दजीवी लेखक की भाषा में अश्लीलता ढूंढना खंडित×सत्य×में×अश्लीलता×× उनकी अपनी कुरूपता और भोंडापन को व्यक्त करता है । खंडित-सत्य अश्लीलता है , इस सूत्र को समझ जाने के उपरान्त ऐसे सवालों से दुपरद्ध हुआ जा सकता है ।

§4§ मटियानीजी ने कुमाऊं बोली में प्रयुक्त रोजमर्रा के शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से किया है , किन्तु परिवेशगत संदर्भ से उनके अर्थ पाठक समझ सकता है । कुछेक शब्दों के खड़ीबोली पर्याय फुटनोट में भी दिए गए हैं ।

§5§ मटियानी जी द्वारा प्रयुक्त कुमाऊं बोली के शब्द कहीं-कहीं ठेठ या ग्रामीण गुजराती में भी मिलते हैं । ऐसे शब्दों को यहां सूचीस्थ किया गया है । कोष्ठक में गुजराती शब्द दिए गए हैं ।

§6§ मटियानीजी की कुमाऊं बोली के शब्दों में कृषि - विषयक शब्दों की बहुतायत मिलती है ।

§7§ उपन्यासों में प्रयुक्त व्यक्तिवाची शब्दों से कुमाऊं प्रदेश×क प्रदेश के ग्रामीण लोगों के नामों पर काफी प्रकाश पड़ता है ।

§8§ संबंधवाची या संबोधनवाची शब्द कुमाऊं प्रदेश की प्रमुख जातियों को भी सूचित करते हैं । अर्थात् व्यक्ति के नाम से ही आप उसकी जाति का भी निर्धारण कर सकते हैं ।

§9§ मटियानीजी की भाषा पर की चर्चा उनके द्वारा प्रयुक्त लोकदेवताओं और देवियों से सम्बद्ध शब्दावली के बिना अधूरी ही समझी जा सकती है ।

§10§ मटियानीजी के इन उपन्यासों में लोकमान्यताओं तथा ग्रामीण अंचल में परिव्याप्त अंधविश्वास से जुड़े हुए अनेक शब्द हमें प्राप्त होते हैं ।

§11§ उनकी भाषा में कुमाऊं प्रदेश के तीज-त्यौहार तथा वहाँ प्रचलित जन-संस्कार के शब्द भी उपलब्ध होते हैं ।

§12§ ग्रामीण-भाषा में भरपूर मात्रा में गालियाँ मिलती हैं । ये गालियाँ ग्रामीण परिवेश की अपनी पहचान है ।

§13§ ग्रामीण परिवेश में प्रयुक्त भाषा लोकबोली होती है और लोकबोली में लोकोक्तियों और कहावतों का प्रयोग बहुतायत से मिलता है , क्योंकि यह भाषा पुस्तकीय भाषा नहीं , प्रत्युत लोगों की अनुभव-पगी भाषा होती है ।

§14§ संक्षेप में कहा जा सकता है कि मटियानीजी कुमाऊं की पृष्ठभूमि पर आधृत भाषा उस अंचल-विशेष की संस्कृति को रूपायित करने में सक्षम है । मटियानीजी जन-जीवन से कितने गहरे स्तर पर जुड़े हुए हैं , उसकी प्रतीति यह भाषा करवाती है और जो उनको हिन्दी के विशिष्ट शैलीकारों में स्थापित करती है ।

======= XXXXXXX ======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

(1) मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका : पृ. 24 ।

(2) वही : पृ. 5-32 ।

(3) "हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा " : डा॰ रामदरश मिश्र : पृ. 192 ।

(4) "आंचलिक उपन्यास : संवेदना और शिल्प " : डा. ज्ञानचन्द्र गुप्त : पृ. 27 ।

(5) हौलदार : भूमिका : पृ. 1-2 ।

(6) एक मूठ सरसों : पृ. 56 ।

(7) चौथी मुट्ठी : भूमिका : एक मूठ अक्षर मेरे नाम : पृ. 7 ।

(8) चिट्ठीरसैन : पृ. 129 ।

(9) चौथी मुट्ठी : एक मूठ अक्षर मेरे : पृ. 6 ।

(10) हिन्दी केआंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि : डा. आदर्श सक्सेना : पृ. 261 ।

(11) हौलदार : पृ. 145 ।

(12) वही : पृ. 218 ।

(13) गुजराती में भी "छोटी" के लिए "नानी" शब्द का प्रयोग होता है ।

(14) गुजराती में भी " चाचा" को "काका" कहा जाता है ।

(15) शैलेश मटियानी के आंचलिक उपन्यास : डा. प्रेमकुमारी सिंह : पृ. 82 ।

(16) द्रष्टव्य : हौलदार : पृ. क्रमशः 7, 13, 19, 25, 32, 51, 57, 61, 69, 74, 76, 76, 79, 89, 101, 112, 127, 207, 230, 232, 239, 246, 247, 263, 340, 340, 348, 54 ।

§17§ द्रष्टव्य : एक मूठ सरसों : पृ. क्रमशः 6, 6, 8, 15, 19, 21, 23, 33, 35, 43, 45, 46, 51, 60, 65, 65, 71, 2 ।

19

§18§ द्रष्टव्य : मुख सरोवर के हंस : पृ. क्रमशः 23, 29, 41, 86, 133, 151, 159 ।

§18§ द्रष्टव्य : चौथी मुट्ठी : पृ. ~~क्रमशः~~ क्रमशः 4, 5, 7, 8, 13, 16, 19, 18, 23, 29, 33, 56, 67, 67, 135 ।

§20§ द्रष्टव्य : चिट्ठीरसैन : पृ. क्रमशः 13, 14, 41 ।

§21§ द्रष्टव्य : हौलदार : पृ. क्रमशः 1, 1, 2, 3, 4, 7, 10, 15, 17, 22, 27, 29, 39, 51, 50, 50, 52, 52, 52, 52, 53, 56, 57, 59, 61, 71, 72, 76, 77, 79, 79, 81, 81, 87, 89, 91, 101, 105, 110, 111, 115, 118, 127, 127, 127, 133, 134, 134, 142, 145, 146, 155, 158, 159, 172, 182, 185, 199, 201, 211, 223, 225, 226, 229, 241, 248, 255, 260, 263, 283, 291, 291, 305, 309, 319, 321, 327, 340, 347, 356, 358, 359 ।

§22§ देखिए : हौलदार, मुख सरोवर के हंस, चौथी मुट्ठी, एक मूठ सरसों आदि उपन्यास ।

§23§ देखिए : उपर्युक्त उपन्यास ।

§24§ द्रष्टव्य : हौलदार : पृ. 54 ।

§25§ द्रष्टव्य : मुख सरोवर के हंस : पृ. 81 ।

§26§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 247 ।

§27§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 253 ।

§28§ द्रष्टव्य : मुख सरोवर के हंस : पृ. 4 ।

§29§ वही : पृ. 144 ।

§30§ द्रष्टव्य : चौथी मुट्ठी : पृ. 167 ।

§31§ द्रष्टव्य : हौलदार : पृ. 90 ।

§32§ हौलदार : पृ. 95 ।

§33§ वही : पृ. 250 ।

§34§ वही : पृ. 252 ।

§35§ वही : पृ. 253 ।

§36§ चौथी मुट्ठी : पृ. 13 ।

§37§ हौलदार : पृ. 248 ।

§38§ वही : पृ. 343 ।

§39§ 1 से 16 के लिए हौलदार , चौथी मुट्ठी , मुख सरोवर के हंस, एक मूठ सरसों प्रभृति उपन्यासों को आधार बनाया गया है ।

§40§ द्रष्टव्य : चौथी मुट्ठी : पृ. 123 ।

§41§ मुख सरोवर के हंस : पृ. 44 ।

§42§ वही : पृ. 38-39 ।

§43§ बर्फ की चट्टानें : पृ. 607 ।

§44§ हौलदार : पृ. क्रमशः 1, 5, 5, 67, 102, 106, 107, 125, 128, 128, 149, 149, 168, 197, 205, 208, 248, 256, 258, 258, 258, 258, 260, 261, 266, 266, 274, 274, 280, 280, 280, 291, 291, 291, 293 ।

§45§ चौथी मुट्ठी : पृ. क्रमशः 6, 9, 11, 14, 15, 27, 29, 34, 90, 90, 90, 94, 94, 95, 95, 95 ।

§46§ " हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा " : डा. रामदरश मिश्र : पृ. 228-229 ।

§47§ मुख सरोवर के हंस : पृ. 176 ।

§48§ द्रष्टव्य : हौलदार : पृ. क्रमशः 27, 79, 86, 98, 104 , 210, 221, 222, 245, 256, 256, 258, 259, 285, 283-284 , 299-300, 309, 322, 356, 356, 356 ।

§49§ सुख सरोवर के हंस : पृ. क्रमशः 10, 10, 11, 73, 76, 84, 91, 118, 123, 141, 205 ।

§50§ एक मूठ सरसों : पृ. क्रमशः 32, 44, 62 ।

§51§ चौथी मुट्ठी : पृ. क्रमशः 2, 50, 52, 52, 103, 131 ।

§52§ नागवल्लरी : पृ. क्रमशः 94, 99, 118, 149, 152, 153, 187, 189 ।

======= XXXXXXX =======